चेतन स्वामी

जन्म : मार्च, 1957

पत्रकारिता और बाद में कॉलेज प्राध्यापक से सेवानिवृत्त

राजस्थानी पुस्तकें : सवाल, चितार (कविता संग्रह), आंगणै बिचाळै भींतां, किस्तूरी मिरग, उल्टो उमाराम (कहानी संग्रह), इन्दर धनख, निरख-परख (निबंध संग्रह)

सम्पादन : आखर (कहानी संग्रह), रचाव (व्यंग्य संग्रह), निजराणो (कविता संग्रह), राजस्थानी पत्रिका जागती जोत का पांच वर्ष सम्पादन। कथाराज-हिन्दी कथा पत्रिका का सम्पादन

अनुवाद : कलिकथा वाया बाइपास (उपन्यास), म्हारो दागिस्तान (लोक वृतान्त), सुपना मोरपांखी (कविता संग्रह) का राजस्थानी अनुवाद।

हिन्दी पुस्तकें : आधुनिक राजस्थानी कहानी और लोकजीवन (शोधग्रंथ), राजस्थानी साहित्य साधक किशोर कल्पनाकांत (लघु शोध ग्रंथ), बातें फतेहपुर की (जीवन प्रसंग), दरिया में आग (सं. कहानियां), बुधगिरि महिमा (संत जीवनी), गांव की साख (बाल कथा), गृहस्थी संत (जीवनी), पूनरासर हनुमान महिमा तथा धनावंशीय संहिता (संपादित) ग्रंथ प्रकाशित। अनेक स्मारिकाओं का सम्पादन।

पत्रकारिता : राजस्थान पत्रिका के 12 वर्ष संवाददाता।

पुरस्कार : साहित्य अकादेमी-नई दिल्ली, मातुश्री कमला गोइन्का पुरस्कार-मुम्बई, महेन्द्र जाजोदिया पुरस्कार-नई दिल्ली, सरस्वती सेवा पुरस्कार-फतेहपुर, सुगन स्मृति, हनुमानगढ़, शिवचन्द्र भरतिया-राजस्थानी भा.सा.सं. अकादमी, बीकानेर।

पत्रकारिता का कड़वा मीठा सच पुरस्कार तीन बार।

राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रसार समिति का 'साहित्य श्री' सम्मान।

पता : कालूबास, पो. श्रीडूंगरगढ़ (बीकानेर)

कानाबाती : 9461037562

बालाजी प्रकाशन
फतेहपुर शेखावाटी
सीकर (राजस्थान)

धनावंशीय संहिता • संपादक : डॉ. चेतन स्वामी

धनावंशीय संहिता

संपादक
डॉ. चेतन स्वामी

भक्त धनाजी का एक पद

रे चित्त चेतसी की न दयाल, दमोदर विवहित जानसि कोई।
जे धावहि खंड ब्रह्मंड कउ, करता करै जु होई।।
जननी केरे उदर उदक महिं, पिंड किया दस द्वारा।
देइ अहार अगनि महिं राखै, अैसा खसम हमारा।।
कुंभी जल मांहि तन तिसु, बाहरि पंख खीर निग्ह नाही।
पूरन परमानंद मनोहर, समझि देखु मन मांहि।।
पाषणी कीट गुपतु होइ रहता, साचो मारगु नाही।
कहै धना पूरन ताहू, को मत रे जीअ उराही।।

बालाजी प्रकाशन
फतेहपुर-शेखावाटी (सीकर) राज.

धनावंशीय संहिता

संपादक
डॉ. चेतन स्वामी

श्री धनावंशी स्वामी समाज को सप्रेम भेंट

सौजन्य :

स्वामी श्री रघुवीर आनन्द सुपुत्र श्री हरद्वारीलाल गहलावत (धनावंशी)

मेसर्स :

हरिओम स्टील ट्रेडर्स

सहजानंद एस्टेट, गोटा रेलवे क्रॉसिंग के पास

गोटा (अहमदाबाद) गुजरात

मो. 9375003924

© डॉ. चेतन स्वामी

प्रकाशक : **बालाजी प्रकाशन**
गुरु का कुआं, चार बत्ती, फतेहपुर-शेखावाटी (सीकर) राज.
मो. 9461037564

संस्करण (प्रथम) : 2019
मूल्य : सप्रेम पाठ
आवरण : गौरीशंकर आचार्य
आखरसाज : रोहित राजपुरोहित
मुद्रक : कल्याणी प्रिंटर्स, मालगोदाम रोड, बीकानेर (राज.) 334001

Dhanavanshiya Sanhita (Adhyatma-Darshan)
by Dr. Chetan Swami

अनुक्रम

1. धनावंशीय सम्प्रदाय में धर्म-दृष्टि (भूमिका) 7
2. धनावंशी महन्तों के पंच संस्कार 9
3. मंदिर-पूजन 11
4. ठाकुरजी का अर्चन-वंदन-पूजन-नाम स्मरण क्यों ? 13
5. श्री धनावंशीय दर्शन 14
6. श्री धनावंशीय सम्प्रदाय 17
7. वैष्णवीय धनावंशी सम्प्रदाय के दस धर्म-लक्षण 19
8. वैष्णव धर्म-मंत्र 21
9. धनावंशी सम्प्रदाय में वैराग्य के 26 गुण 23
10. धनावंशीय सम्प्रदाय—दृष्टिकोण 26
11. वैष्णव अवतार 29
12. श्री सम्प्रदाय के बहोत्तर उपदेश 31
13. धनावंशी वैष्णवों की बारह प्रकार की शुद्धि एवं पांच प्रकार की पूजा 35
14. भगवान विष्णु की महिमा, उनकी भक्ति के भेद तथा अष्टाक्षर मंत्र के स्वरूप एवं अर्थ का निरूपण 37
15. श्रीविष्णु और लक्ष्मी के स्वरूप, गुण, धाम, विभूतियों का वर्णन 43
16. श्रीविष्णु पूजन की विधि, वैष्णवोचित आचार 48
17. वैष्णवों के लिए नाम कीर्तन की महिमा, विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र का वर्णन 56
18. वैष्णवों के लक्षण और महिमा तथा श्रवण द्वादशी 61
19. धनावंशियों के लिए गोपीचंदन का महत्त्व 66
20. धनावंशीय तिलक 68

21. धनावंशीय वैष्णवों के लिए तुलसी-वृक्ष की अनिवार्यता 71
22. तुलसी का माहात्म्य 74
23. वैष्णवों के लिए प्रयागराज तीर्थ का महत्त्व 79
24. वैष्णवों के पुष्कर आदि तीर्थों का वर्णन 81
25. धनावंशीय वैष्णवों के लिए गण्डकी नदी का माहात्म्य 84
26. शालग्राम के प्रकारों में भगवद् दर्शन 86
27. शालग्राम शिला के पूजन का माहात्म्य 90
28. भगवान के मंदिर में बतीस अपराधों का निषेध 93
29. धनावंशीय नित्यकर्म विधि 95
30. प्रातः स्मरणीय वन्दना 98
31. श्रीराम-वन्दना 108
32. श्रीरामावतार 109
33. श्रीराम-स्तुति 110
34. श्रीराम-निवेदन 111
35. आरती 112

⌘⌘

❑भूमिका

धनावंशीय सम्प्रदाय में धर्म-दृष्टि

धनावंशीय सम्प्रदाय का आविर्भाव धर्म पथ पर चलने के लिए हुआ है। यह वैष्णव आचरणों को ग्रहण कर, धर्मशास्त्रानुसार अपनी धार्मिक मान्यताओं और परम्पराओं को आत्मसात किए हुए है।

धनावंश सम्प्रदाय में अनेक संत-भक्त तथा सद्गृहस्थ हुए हैं और हैं, जो साधनात्मक धर्म मार्ग पर चरैवेति-चरैवेति अग्रसर हैं।

धर्म के संबंध में गीता में कहा गया है—'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावह'। अपने गंतव्य को प्राप्त करने के लिए धर्म का मार्ग ही उपयुक्त है। हम जिस सुख की अभिलाषा रखते हैं, वह धर्माचरण से ही प्राप्त हो सकता है। पुराणों में धर्म की विशद व्याख्या हुई है, इसलिए पुराणों का अध्ययन वैष्णवों के लिए परमावश्यक है। पुराणों को धर्मकोश भी कहा जाता है। 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' के तृतीय खंड में 'हंस गीता' के 116 अध्यायों में वैष्णवों के लिए पालनीय धर्म का व्यापक वर्णन है। धर्म और अध्यात्म के मार्ग पर चलने वाले सज्जनों को धर्मग्रंथों का निरंतर स्वाध्याय करना चाहिए।

धर्म को दार्शनिक, पौराणिक तथा आनुष्ठानिक तीन वर्गों में विभक्त कर उसके प्रत्येक भाग का गंभीरतापूर्वक अध्ययन-मनन करने की आवश्यकता है। सनातन धर्म जो अनादि और अनंत है, वह उपरोक्त तीन व्याख्याओं से भलीभाँत समझा जा सकता है। धर्म कभी भी समाप्त नहीं होता, इसलिए उसे सनातन कहा है। यह सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर उसके अंत तक रहता है। 'मनुस्मृति' में भी धर्म के लक्षणों की बहुत अधिक विवेचना हुई है।

धनावंश में धर्म का मूल उद्देश्य है विषयों की भोग आसक्ति से विरक्त रहकर वैराग्य के भावों को अपनाना तथा अपने आपको वैराग्य के उच्च शिखर पर स्थापित करना। ऐसा आचरण ही वैरागी का सच्चा आचरण है। धनावंशीय स्वामी समुदाय कृषि

को आजीविका के रूप में अपनाने वाला समुदाय है। एक ओर वह कृषक के रूप में अन्नदाता की भूमिका में है, वहीं दूसरी ओर ठाकुरजी में गहन प्रीति है। भगवान् को भक्त का यह रूप बहुत अच्छा लगता है। कर्तव्य-कर्म में निरत रह कर परमात्मा का भजन करना, इससे उत्तम भक्ति का कोई रास्ता नहीं है। ठाकुरजी को अकर्मण्यता अप्रिय है। अपने विहित कर्म करते-करते प्रभु प्राप्ति का मार्ग ही धनावंश का धार्मिक और आध्यात्मिक मार्ग है।

इस पुस्तक में 'धनावंशीय संहिता' के रूप में कतिपय उन प्रेरणीय एवं ग्रहणीय आचरणों एवं धर्म नियमों का उल्लेख है, जो वैष्णवीय पूजा विधान को प्रतिपादित करते हैं। हरेक धार्मिक संप्रदाय को अपने धर्म नियमों से अवगत रहना आवश्यक है, केवल इसी प्रेरणा से इन्हें संकलित-संपादित कर प्रकाशित किया जा रहा है, आशा है धनावंशीय मर्यादाओं में बंधे प्रत्येक धनावंशी को यह पुस्तक उपयोगी लगेगी।

धर्म के नियामक ठाकुरजी हैं, इसलिए हमारा प्रत्येक कर्म उन्हें ही समर्पित है। धर्म का प्रभाव स्थल-हृदय है इसलिए हृदय ही धार्मिक आचरणों को ग्रहण करता है।

मनुजी महाराज ने अपने ग्रंथ 'मनुस्मृति' में धर्म के दस लक्षण गिनाए—

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धी र्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

धीरज, क्षमा, दम, अचौर्य, पवित्रता, इन्द्रिय निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दस धर्म के लक्षण हैं। इन्हें हम विस्मृत न करें और सद्राह पर चलते रहें। धर्म की चीजें कई बार लुप्त होने लगती हैं—पर जागरूक समाज पुनः अपने पंथ को खोज ही लेता है, तुलसीदासजी ने मानस में कहा है—

हरित भूमि तृन संकुल, समुझि परह नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बिबाद ते, लुप्त होहिं सद्ग्रंथ।।

हमारी धार्मिक परम्पराएँ कभी लुप्त न हो, इसी सद्भाव के साथ, तेरा तुझको अर्पण। सभी धनावंशी मेरे प्रिय एवं आदरणीय हैं। मुझे उनसे बहुत कुछ सीखना है। धनावंश के उच्च स्तरीय प्रभु भक्तों को प्रणाम। इस पुस्तक में पुराणों से बहुत सामग्री ली गई है, पुराण रचयिता वेद व्यास जी महाराज के चरणों में वंदन।

भगवद् किंकर

चेतन स्वामी

धनावंशी महन्तों के पंच संस्कार

महंत हमारे समाज के गुरु होते हैं। वे हमें दीक्षा देते समय पंच संस्कार करते हैं। ये पंच संस्कार सभी वैष्णवों में आवश्यक हैं।

(1) प्रथम संस्कार (मुद्रा संस्कार)

पाँच मुद्राएँ होती हैं—जो भगवान् श्रीविष्णु की प्रतीक हैं।

(1) धनुष (2) बाण (3) नाम (4) चन्द्रिका (5) मुद्रिका

शिष्य की बायीं भुजा पर धनुष, दाहिनी भुजा पर बाण, वक्षस्थल पर युगल नाम (सीतारामजी) और मुद्रिका तथा ललाट पर चन्द्रिका। ये पाँच मुद्राएँ पाँच तन्मात्राओं के प्रभाव से साधक की रक्षा करती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पंच तन्मात्राएँ हैं।

ये मुद्राएँ तप्त एवं शीतल दोनों प्रकार की होती हैं, किंतु महन्त शीतल छाप ही लगाते हैं। धनावंशी वैरागी के लिए द्वारिका में जाकर तप्त मुद्रा लेने का विधान भी प्रारंभ से है। इस संबंध में हमारे यहाँ एक कहावत भी प्रसिद्ध है—'धरणीधर री झलेलो, तो तीन लोक में खेलेलो।' अर्थात त्रिलोकी के गुण उसे परेशान नहीं करते।

वैष्णवी मुद्रा में शंख, चक्र की मुद्रा लेने का भी विधान है। पद्मपुराण में उल्लेख है—

एक विंशति कुलं तैस्तु तारितं तेषु जन्मसु।
शंख चक्रांकितो यस्तु विप्र पूजनमाचरेत्।।

जो मनुष्य शंख चक्रांकित (वैष्णव) होकर भगवद् पूजन करता है, उसकी इक्कीस पीढियाँ मुक्त हो जाती हैं और जो वैष्णव ऐसा नहीं करता है, उसके लिए कहा है—

चक्र चिह्न विहीनस्तु यः पूजयति केशवम्।
तत्सर्व विफल याति पूजा मंत्र जपादिकम्।।

(2) तिलक

धनावंशीय वैष्णव सम्प्रदाय में तिलक का बड़ा महत्त्व है। इस तिलक का वही महत्त्व है, जो सधवा स्त्रियों की मांग में सिंदूर लगाना। तिलक युगल स्वरूप का प्रतीक है। तिलक लगाकर वह हरि-पूजा का अधिकारी हो जाता है।

ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक को भगवान् का चरण-चिह्न समझ कर ललाट पर धारण किया जाता है। तिलक शरीर के बारह स्थानों पर लगाया जाता है। राम भक्ति वाले चित्रकूट की रामरज का तिलक लगाते हैं, वहीं श्रीकृष्ण भक्त गोपीचंदन का तिलक करते हैं।

(3) नव नाम प्रदान

शिष्य को भगवद् संबंधी नव (नया) नाम प्रदान किया जाता है। यह भी गुरु-दीक्षा का एक प्रकार है। लेकिन नव नाम की दीक्षा गृहस्थ के लिए नहीं है।

(4) मंत्र दीक्षा

सर्व कर्मों की सिद्धि के लिए वैष्णव गुरु से मंत्र दीक्षा लेनी चाहिए। अवैष्णव से मंत्र दीक्षा नहीं लेनी चाहिए। अवैष्णव गुरु नहीं होता। गुरु शिष्य को तारक मंत्र की दीक्षा प्रदान करता है। मंत्र का उपदेश शिष्य के दाहिने कान में किया जाता है। उस मंत्र के तत्त्वगत महत्त्व से भी गुरु, शिष्य को अवगत कराते हैं।

(5) कंठी संस्कार

साधु समाज में कंठी धारण का बड़ा महत्त्व है। कंठी तुलसी काष्ठ की होनी चाहिए। कंठी भगवान् से अनन्यता का बोध कराती है। गले में कंठी धारण करवाने के अलावा गुरु अपने शिष्य को तुलसी काष्ठ से बनी 108 मनकों की माला भी प्रदान करते हैं। उससे भगवन्नाम स्मरण का आग्रह किया जाता है।

धनावंशीय उपरोक्त संस्कार आवश्यक हैं। हमारे गुरु हमारे महंत हैं। उनसे आग्रह कर उनका शिष्यत्व ग्रहण करना चाहिए। वर्ष में एक बार श्री महंत को अपने आंगन में बुलाकर उनका पूजन करने का विधान है, तथा महंत द्वारों पर भी जाना चाहिए।

मंदिर-पूजन

धनावंशी वैरागियों के बहुत सारे मंदिर हैं, जिनमें वे निष्ठापूर्वक ठाकुरजी की पूजा करते हैं। मंदिर का पुजारी प्रातः चार बजे शय्या त्याग कर शौच-स्नानादि से निवृत्त होकर मंदिर के पट्ट खोलने की क्रिया करता है। पट्ट खोलने से पूर्व दोनों हाथों से ताली बजाने की क्रिया करता है। यह एक प्रकार से ठाकुर को जगाने एवं सावधान करने की प्रक्रिया है। घंटी भी बजाई जाती है। तदुपरांत पुजारी मंदिर की सफाई करते हैं। सफाई के उपरांत हाथ धोकर ठाकुरजी को बड़े प्रेम से निमज्जन कराया जाता है। निमज्जन के लिए पवित्र जल शंख में भरकर, एक बड़े बर्तन में ठाकुरजी को नहलाया जाता है। इसे ही चरणामृत के रूप में भक्तजन काम में लेते हैं। स्नान के उपरांत मूर्ति को शुद्ध वस्त्र से पौंछकर उन्हें वस्त्रादि पहनाकर, शृंगारित किया जाता है। फिर उन्हें नियत स्थान पर विराजित कराया जाता है। फिर पुजारी जी चंदन घिसकर ठाकुरजी को चंदन का तिलक करते हैं, माल्यार्पण करते हैं। शालग्रामजी को तुलसी चढ़ाई जाती है। तुलसी इतनी मात्रा में होती है कि उससे शालग्रामजी पूरे से ढंक से जाते हैं। यही तुलसी और शालग्रामजी का चरणामृत श्रद्धालुओं को प्रसाद रूप में दिया जाता है।

तदुपरांत शुरू होती है नित्य स्तुतियाँ। सर्वप्रथम गणेश-वंदना किए जाने का विधान है, फिर दीर्घ हरि ॐ की ध्वनि, फिर अगर मंदिर रामजी का है तो राम-वंदना और कृष्णजी का है तो कृष्ण-वंदना की जाती है। सरस्वती वंदना, जगदम्बा स्तुति, शिव स्तुति सहित पौन घंटे तक देव स्तुतियाँ बड़े प्रेम से पुजारी करते हैं। इसी बीच श्रद्धालु आने शुरू हो जाते हैं, वे कुछ भजन-हरजस करते हैं। फिर आरती 'ॐ जय जगदीश हरे' के साथ नौमुखी दीपक से करते हैं। आरती समाप्त होने के बाद भगवान् को बालभोग लगाया जाता है। बालभोग में दही-मक्खन, मिश्री, तुलसी मेवा-मिष्ठान लगाया जाता है। दोपहर में बारह बजे भगवान् को बड़ा भोग लगाया जाता है—पुजारी स्वयं जो भोजन बनाता है, वही ठाकुरजी को भोग लगाने का विधान है तथा कुछ पुजारी पूड़ी, चूरमा, खीर आदि भी चढ़ाते हैं। समयानुकूल सब्जी का भी भोग भगवान्

को लगाया जाता है। लहसुन, प्याज, बैंगन, लौकी आदि चीजें ठाकुरजी को नहीं चढ़ाई जाती। उन्हें सात्विक भोग ही लगाया जाता है।

दोपहर में मंदिर में कीर्तन का विधान है।

सायंकाल की पूजा गोधुली वेला में करना श्रेयष्कर है। सायं को फिर मंदिर की साफ-सफाई कर, धूपादि खेवन कर पहले आरती संजोयी जाती है, फिर झालर, शंख, नगारा आदि लेकर पुजारी परिवार के सदस्य तथा आए हुए श्रद्धालु बड़े भक्तिभाव से आरती करते हैं। परिक्रमा करते हुए 'रामचन्द्र कृपालु भज मन', 'त्वमेव माता च पिता...', 'शांताकारम् भुजग शयनम्' जैसी स्तुतियाँ, एक श्लोकी रामायण, एक श्लोकी भागवत् का वाचन, हनुमानजी की परिक्रमा करते हुए हनुमत स्तुतियाँ, शिव पंचायतन के सामने, नागेन्द्रहारम् जैसी स्तुतियाँ कहते हैं। फिर किया जाता है—दण्डवत प्रणाम।

उसके बाद घंटा दो घंटा मंदिर में भजन गाकर भगवान् को रिझाया जाता है। फिर भगवान् को पोढणा किया जाता है। प्रातः भगवान् को उठाने के हरजस, दांतणिया वगैरह गाने का विधान है।

दोपहर 12 बजे तक लोग दर्शनार्थ आते रहते हैं—भोग के बाद पट्ट बंद कर दिए जाते हैं।

चरणामृत मंत्र

अकालमृत्यु हरणं सर्वव्याधि विनाशनम्।
विष्णुपादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम्।।
एकादशी व्रतं गीता गंगाम्बु तुलसीदलम्।
विष्णोः पादाम्बु नामानि मरणे मुक्तिदानि च।।
तीर्थे प्रसाद स्वीकारानन्तरं वैष्णवो द्विजः।
न हस्तक्षालनं कुर्यात न तत्राचमन क्रिया।।

ठाकुरजी का अर्चन-वंदन-पूजन-नाम स्मरण क्यों ?

कतिपय अज्ञानीजन सभी समुदायों में होते हैं। वे अज्ञानतावश भगवद् पूजन और भगवद् स्मरण से दूर रहते हैं। चाहे वे उन सम्प्रदायों में ही क्यों न उत्पन्न हुए हों जिनका उदय भगवद् भक्ति के लिए हुआ है। वैष्णव परिवार में जन्म लेकर, ठाकुरजी से विमुख रहे, तो यह कोई प्रारब्धवश थोड़े ही हुआ है। प्रारब्ध से तो उसके भाग्य में ईश्वर-भक्ति लिखी हुई है, तभी वैष्णव परिवार में जन्म हुआ है। पर, वह अपने मनमाने स्वभाव के कारण अपकर्म करता हुआ जीवन व्यतीत करे तो उसे कौन रोक सकता है। गड्ढा किसी को गिरने के लिए प्रेरित नहीं करता, पर कोई जान-बूझकर गिरे तो उसे कौन रोक सकता है!

ठाकुरजी की आराधना क्यों की जानी चाहिए? कहा गया है कि तृषित और क्षुधित व्यक्ति की भूख-प्यास भोजन-पानी प्राप्त होने से ही शांत होती है, उसी प्रकार नाना दुष्प्रवृत्तियों और मनोविकारों से घिरा यह मनुष्य बिना ईश्वरोपासना के विकारों का पुतला होता जाएगा और दुराचरण, दुष्प्रवृत्तियां, दुव्यर्सन जैसे शत्रु उसे चारों ओर से घेर लेंगे। उसका अनमोल, यह मनुष्य जन्म तो खोएगा सो खोएगा, पर अगले लाखों जन्म उसे विभिन्न योनियां में उत्पन्न होकर असंख्य दुःखों का सामना करना पड़ेगा।

संसार का प्रत्येक जीव सुख का अभिलाषी है और उसके समस्त प्रयत्न और प्रयास सुखी होने के ही रहते हैं। कहा गया है—'अशान्तस्य कुतः सुखम्'। भगवान श्रीकृष्ण के मुख से उच्चरित यह वाक्य मनुष्य जगत् के लिए बड़े काम का है। भगवद् भक्ति अर्थात् ईश्वरानुराग के बिना किसे शान्ति प्राप्त हुई है?

जो शांति और निर्वेद की खोज में रहता है, उसे ही तो वैरागी कहते हैं। जो साधनारत रहना चाहता है, वही तो साध है, जो अपनी इन्द्रियों को वश में रखनेवाला है, उनका नियंता है, वही तो स्वामी है। इसलिए एक वैरागी का ठाकुरजी से सतत जुड़ाव उसे ऊंचे लोकों की प्राप्ति कराएगा, मोक्ष दिलवाएगा। स्वामी होना तो एक चुनौती है। इन्द्रियों का स्वामी ही सच्चा स्वामी है।

श्री धनावंशीय दर्शन

जिस प्रकार आचार्य रामानंदजी का दर्शन अपने पूर्ववर्ती श्रीरामानुजाचार्य के विशिष्ट द्वैत से भिन्न नहीं है, उसी प्रकार भक्त धनाजी भी उसी दर्शन से अनुप्राणित होकर पंद्रहवीं शताब्दी के धार्मिक आंदोलन को आगे बढ़ाने का कार्य करते हैं। वैष्णव भक्ति को लोकप्रिय बनाना उनका मुख्य ध्येय था। वैसे तो वे एक निस्पृह भक्त थे, किंतु उनकी दार्शनिक धारणा और चिंतन अपने गुरु से विलग नहीं था।

धनाजी ने अपना दार्शनिक सिद्धांत, पूजा पद्धति या आचार-विचार को कोई नया बाना पहनाने का प्रयास नहीं किया।

'विशिष्टाद्वैत' सिद्धांत को रामानंदजी ने 'ब्रह्मसूत्र' से सम्मत बताया था। डॉ. सत्यप्रकाश दुबे के अनुसार, 'उन्होंने अनन्य भक्ति को मोक्ष का ऋजु (सुंदर) उपाय, प्रपत्ति को मोक्ष का हेतु, कर्मों को भक्ति का अंग, ब्रह्म की जगत् के प्रति निमित्तोपादन कारणता, सविशेष ब्रह्म, वर्णाश्रम व्यवस्था की विद्योपकारिता, जीवों का पारस्परिक भेद-नानात्व-अणुत्व-भोक्तृत्व-कर्तव्य तथा नित्यत्व स्वीकार किया है।'

रामानंदनजी ने अपने ग्रंथ 'वैष्णवमताब्ज भास्कर' में वैष्णव सिद्धांत और आचार के संबंध में विस्तृत विवरण दिया है। धनाजी ने उन सब आचरणों एवं सिद्धांत को आत्मसात किया। भगवद् प्रपत्ति में तो वे पहले से ही निमग्न थे। रामानंद द्वारा उनकी शिष्य रूप में स्वीकार्यता का एक बड़ा कारण धनाजी की भक्ति ही थी। उस समय हजारों विद्वत लोग रामानंदजी के शिष्य बनने को तत्पर थे, पर उन्होंने जिन बारह प्रभुभक्तों को प्रमुख शिष्यों के रूप में मान्यता प्रदान की वे सभी सविशेष प्रभुभक्ति से निष्पन्न व्यक्तित्व थे। धनाजी उनमें एक थे। गुरु शिष्य का वरण इसलिए करता है ताकि वह आगे जाकर आचार्य-पद को प्राप्त कर अपने शिष्य-वर्ग का कल्याण करे।

विशिष्टाद्वैत

विशिष्टाद्वैत सिद्धांत अत्यंत प्राचीन है। ब्रह्मसूत्र में इसका उल्लेख आचार्य आश्मरथ्य के नाम के साथ प्राप्त होता है। आचार्य श्रीकंठ ने पांचवीं शताब्दी में इसकी

व्याख्या की। पांचरात्र मत भी इससे मिलता-जुलता है। महाभारत में इस मत का उल्लेख है।

दसवीं शताब्दी में यामुनाचार्य ने विशिष्टाद्वैत को नवप्रकाश प्रदान किया। ग्यारहवीं शताब्दी में रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत सिद्धांत का इतना अधिक प्रचार किया, जिससे इस सिद्धांत का नाम 'रामानुज मत' पड़ गया। विशिष्टाद्वैत में दो शब्दों की संधि है—'विशिष्ट और अद्वैत'।

विशिष्ट का तात्पर्य—चेतन और अचेतन विशिष्ट ब्रह्म। अद्वैत अर्थात्—अभेद यानी एकत्व। अर्थात् चेतन-अचेतन ब्रह्म के अभेद का निरूपण करनेवाला सिद्धांत। इस सिद्धांत की व्याख्या करने के लिए रामानुजाचार्य ने 'ब्रह्मसूत्र' पर 'श्रीभाष्य' तथा 'गीताभाष्य' की रचना की। ऊपर-ऊपर से देखने पर तो यह लगता है कि रामानुजाचार्य ने शंकराचार्य के सिद्धांत अद्वैतवाद का खंडन किया है जबकि उन्होंने विशिष्टाद्वैत के माध्यम से अद्वैतवाद को आगे बढ़ाने का कार्य किया है।

रामानुजाचार्य के सिद्धांत को रामानंदाचार्य ने और अधिक सरस शैली में समझाने का यत्न किया है। रामानंदजी के शिष्य सुरसुरानंद ने उनके समक्ष दस प्रश्न रखे थे। वैष्णवों के लिए आज भी वे अति महत्त्वपूर्ण हैं—वे दस प्रश्न इस प्रकार थे :

1. तत्त्व क्या है ?
2. जाप्य मंत्र क्या है ?
3. इष्ट का ध्यान और उनका स्वरूप कैसा है ?
4. मुक्ति का साधन क्या है ?
5. श्रेष्ठ धर्म कौनसा है ?
6. वैष्णवों के धर्म क्या हैं ?
7. उनके कितने भेद हैं ?
8. वैष्णवों का निवास कहाँ हो ?
9. वैष्णवों का कालक्षेप कैसे हो ?
10. उनका (वैष्णवों का) प्राप्य क्या है ?

रामानंदाचार्य के दर्शन में उपर्युक्त सभी प्रश्नों का हल उपस्थित है। ब्रह्म को उन्होंने—चित्-अचित्द्विलक्षण संपन्न कहा है। चित्-जीव है, अचित् त्रिगुणात्मक प्रकृति है, तद्विशिष्ट ईश्वर हैं। अर्थात् परमतत्त्व चित् अचित् विशिष्ट ब्रह्म स्वरूप में

अवस्थित है। वह ब्रह्म ही विष्णु रूप है और वे ही 'राम' रूप में अवतीर्ण हुए। इसलिए उनकी उपासना करनी चाहिए। दो भुजाओं वाले राम, अंतर्यामी एवं ब्रह्मस्वरूप हैं। मुक्ति केवल भक्ति से संभव है। सीता—मायास्वरूप है तथा चौदह गुणों से समन्वित हैं। वे राम की आह्लादिनी शक्ति हैं। यों तो वे ब्रह्म में निवास करती हैं किंतु सृष्टि सृजन में वे प्रकृति रूप में कार्य करती हैं। माया के विद्या माया और अविद्या माया दो रूप हैं। रामानंदजी के शिष्यों में आगे चलकर कृष्णदास पयहारी के शिष्य अग्रदासजी ने रसिक सम्प्रदाय की स्थापना कर रामप्रिया सीताजी को बड़ी मान्यता प्रदान की।

मुक्ति—रामजी के अनुग्रह से जीव को मोक्ष प्राप्त होती है। इसी मोक्ष के लिए साधना की जाती है। भक्ति से प्रसन्न भगवान् जीव को मुक्ति प्रदान करते हैं। जीव को परम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए भक्ति मार्ग को अपनाना पड़ता है। 'रां रामाय नमः' तथा 'श्रीरामचन्द्र चरणौ शरणं प्रपद्ये'जैसे मंत्र भी रामानंदजी ने दिए।

चित्-अचित्-विशिष्ट परमात्मा की प्राप्ति में धना ने थोड़ा वैभिन्य का सहारा लिया। उन्होंने अपने ठाकुरजी को कहीं श्रीराम रूप में तो कहीं गोपाल रूप में देखा। एक भांति से वे यह मानते थे कि विष्णु रूप में राम अथवा कृष्ण की भक्ति वंदना पहुँचती उस पर ब्रह्म परमात्मा तक ही है।

इसलिए धनावंशी स्वामी ठाकुरजी के रूप में श्री सीतारामजी एवम् श्री राधाकृष्णजी, दोनों के विग्रह का पूजन करते हैं। ये सगुण साकार रूप ही उनके उपास्य हैं। श्री धनावंश के पंथ प्रवर्त्तक भक्त धनाजी महाराज ने भक्तिवश भगवान के साकार-निराकार रूपों में कोई भेद नहीं किया। वे तो केवल अपने प्रभु को रिझाना जानते थे।

श्री धनावंशीय सम्प्रदाय

श्री रामानंदाचार्य से दीक्षित श्री धनाजी भक्त ने अपने अनुयायियों के लिए जिस धर्म-पंथ का प्रणयन किया उसे 'धनावंश' कहते हैं। 'वंश' के दो तात्पर्य होते हैं—एक पीढ़ीगत तथा दूसरा गुरु द्वारा संचालित। हमारा धनावंश गुरु आधारित है। जिन्होंने भी उनके द्वारा प्रशस्त मार्ग का अनुगमन किया, वे धनावंशी कहलाए। 'धनावंश' वैरागी स्वामीजनों का एक सुघड़ और सुदृढ़ सम्प्रदाय है।

सम्प्रदाय के संबंध में कहा गया है—'सम्यक् प्रदीयत इति सम्प्रदायः'—गुरु परम्परा से भली-भांति चलानेवाले पंथ को सम्प्रदाय कहते हैं। गुरु अपने शिष्यों को भली प्रकार मंत्र, आराध्य, एक आराधना पद्धति तथा आचारण संहिता सौंपता है। परम्परा से शिष्य इसे ग्रहण करते रहते हैं।

सम्प्रदाय एक भांति से—धर्म के पंथ विशेष को कहते हैं। सम्प्रदाय, अनुयायी को एक रास्ता प्रदान करता है, जिस पर चलकर वह अपने धार्मिक अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है। यह कल्याण का मार्ग दिखलाता है।

आधुनिक व्याख्याओं और मान्यताओं ने 'सम्प्रदाय' शब्द को संकीर्ण बना दिया है, जबकि यह न तो संकीर्ण है और न ही हेय है। सम्प्रदाय से जुड़े बिना व्यक्ति भक्ति के मार्ग पर आसानी से अग्रसर नहीं हो सकता।

सम्प्रदाय, अपने गुरु और अपने पंथ के प्रति श्रद्धा, अपने इष्ट के प्रति अनुराग उत्पन्न करता है। एक अपनेपन के साथ गुरु, मंत्र, उपासना, आचार से जुड़कर व्यक्ति अपना आध्यात्मिक उत्थान आसानी से कर सकता है। जब तक व्यक्ति अपने सम्प्रदाय को जानता नहीं है या उसकी उपेक्षा-अवहेलना करता है, अपने जातीय अभिमान से अनभिज्ञ रहता है। अपने सम्प्रदाय के साधना-पथ को जानना बड़ा ही आवश्यक है। सम्प्रदाय के अपने पारम्परिक व्यवहारों में समय-समय पर कई नई बातें जुड़ती जाती हैं। वे नई बातें सम्प्रदाय की संरक्षा करनेवाली तथा नव-उत्कर्ष प्रदान करनेवाली हों

तो, उन्हें अवश्य अपनाया जाए। सम्प्रदाय एक मार्ग है और मार्ग पर चले बिना, लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?

भारत में शैव, शाक्त,गाणपत्य, सौर, वैष्णव, बौद्ध, जैन, सिख आदि सब सम्प्रदाय ही हैं। इन सभी सम्प्रदायों की समयान्तर बहुत-सी शाखाएँ चलीं। इन सब पंथों का अपना महत्त्व रहा। वैष्णव सम्प्रदाय के अंतर्गत ही रामभक्ति, कृष्णभक्ति और निर्गुण साधना पद्धति के अनुसार अनेक सम्प्रदायों का निर्माण हुआ। श्री धनावंशीय सम्प्रदाय भी इसके अंतर्गत ही पुष्पित-पल्लवित हुआ और इस स्वतंत्र समुदाय में श्री ठाकुरजी के अनुयायी सम्पूर्ण देश में लाखों की संख्या में हैं।

कालांतर में सम्प्रदाय बनते, बिगड़ते, परिवर्द्धित होते रहते हैं। महापुरुष जिस नव पंथ का अनुसंधान करते हैं—वह आगे जाकर अनुयायियों के एक संगठन तथा महापुरुष की मान्यताओं के अनुरूप एक नव सम्प्रदाय का रूप ले लेता है।

लगभग पांच सौ पचास वर्ष पूर्व धना ने अपनी निस्पृह भक्ति के मार्ग से जिन अनुयायियों को प्रबोधित किया, वह आगे चलकर धनावंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राजस्थान, हरियाणा और पंजाब में इस पंथ से अनेक अनुयायी जुड़े, जो आज एक स्वतंत्र जाति के रूप में धनावंशी—स्वामी, साध, वैरागी कहलाते हैं।

जाति निरूपण

श्रद्धावश लोग किसी महापुरुष के अनुयायी बनते हैं। वे अनुयायी पहले से किसी न किसी वर्ग या जाति के होते हैं, पर जब वे अपने श्रद्धास्पद के प्रति मन-वचन-कर्म से समर्पित हो जाते हैं, तो अपने श्रद्धास्पद के प्रति कृतज्ञतावश एक नए पंथ, सम्प्रदाय को अंगीकृत करते हैं। फिर, वही सम्प्रदाय जाति का रूप धारण कर लेता है और सभी अनुयायी अपने रिश्ते उसी जाति संगठन में करने लगते हैं। दिनोंदिन वह जाति सुदृढ़ और मजबूत होती जाती है। उस जाति के अपने आचरण नियम बन जाते हैं, जिनका पालन सभी के लिए अनिवार्य होता है।

वैष्णवीय धनावंशी सम्प्रदाय के दस धर्म-लक्षण

धर्माचार्य मनु ने जिन दस पदार्थों को जीवन में धारण करने को कहा—वे ही धर्म के दस लक्षण कहलाए। भक्त धना ने इनसे भिन्न किन्हीं धर्म लक्षणों को मान्यता प्रदान नहीं की। मनुस्मृति में वर्णित ये दस धर्म लक्षण मनुष्य के जीवन को उच्चता प्रदान करनेवाले हैं।

जीवन में दो प्रकार के धर्म को महत्त्व दिया गया है। एक है प्रवृत्ति धर्म, दूसरा है निवृत्ति धर्म। निवृत्ति धर्म को अपना कर हम वैरागी हैं, वैराग्य को धारण करते हैं। वैराग्य क्या है, इसकी चर्चा आगे करेंगे। प्रवृत्ति धर्म हमें भली प्रकार सांसारिक कार्यों में प्रवृत्त करता है। प्रात:काल के नित्यकर्मों को निपटा कर हम विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों में संलग्न होते हैं। संध्या, ध्यान, जप, तप, उपासना, अग्निहोत्र, पूजा-पाठ, विग्रह दर्शन (ठाकुरजी के दर्शन) धार्मिक ग्रंथ पठन, अतिथि भोजन, जीविकोपार्जन, ये सब प्रवृत्ति धर्म ही हैं। उपर्युक्त कार्यों को हम सदाचारपूर्वक सम्पन्न करते हैं। मनुष्यों को सदा ही सदाचार का पालन करना चाहिए और दुराचार से दूर रहना चाहिए। सद्राह प्रवृत्त करनेवाले दस धर्म लक्षणों को जानने से पूर्व हमें सदाचार में बाधक बारह दोषों को जान लेना चाहिए।

महाभारत में इन बारह दोषों का वर्णन इस प्रकार है :

क्रोध: कामो लोभमोहौ विधित्सा कृपासूये मानशोकौ स्पृहा च।
ईर्ष्या जुगुप्साच मनुष्य दोषा वर्ज्या: सदा द्वादशैते नराणाम्।।
एकैक: पर्युपास्ते ह मनुष्यान मनुजर्षभ।
लिप्समानोऽन्तरं तेषां मृगाणामिव लुब्धक:।।

अर्थ है—काम, क्रोध, लोभ, मोह, असंतोष, निर्दयता, असूया, अभिमान, शोक, स्पृहा, ईष्या एवं निन्दा—मनुष्यों को इन बारह दोषों का सदा ही परित्याग करना चाहिए। हे नरश्रेष्ठ, जिस प्रकार व्याघ (बाघ) मृगों को मारने की टोह लेता रहता है और अवसर की तलाश में रहता है उसी प्रकार ये दोष भी मनुष्य की असावधानता को देखकर, उस पर आक्रमण कर देते हैं।

धर्म के दस लक्षण

मनुस्मृति का कथन—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विधा सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

1. धृति—धैर्य को कहते हैं। कितना भी नुकसान क्यों न हो जाए, धैर्य का पल्लू न त्यागना ही धृति है। किसी भी प्रतिकूल से प्रतिकूल स्थिति में अपने धर्म का परित्याग न कर, अनुद्विग्न भाव से कर्तव्य का पालन करते जाना।

2. क्षमा—किसी के भी अपराध को सह लेना ही क्षमा है। उससे बदला न लेने की भावना, क्रोध की बात पर भी क्रोध न करना क्षमाशील व्यक्ति के ही वश की बात है। क्षमाशील व्यक्ति अपमान सह लेता है।

3. दम—सहनशीलता ही दम है। मन का दमन कर लेना, रोक लेना। मन को निर्विकार रखना, उसे मनमानी न करने देना ही दम है।

4. अस्तेय—चोरी नहीं करना। दूसरों की वस्तुओं पर मन नहीं जाना, अन्याय से धन नहीं ग्रहण करना, यही अस्तेय है।

5. शौच—शरीर के भीतर-बाहर की शुद्धता को शौच कहते हैं। इसके लिए आहार शुद्धि भी आवश्यक है।

6. इन्द्रिय निग्रह—ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों पर रखा जानेवाला कठोर पहरा ही इन्द्रिय निग्रह है। इन्द्रिय निग्रह से ही व्यक्ति जितेन्द्रिय बनता है। इन्द्रियां अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त होने के लिए तैयार ही रहती है। पर विवेक से उन्हें रोकना ही इन्द्रिय निग्रह है।

7. धी—विशिष्ट ज्ञान, विवेक ही 'धी' का रूप है। प्रत्येक विषय को भलीभाँति जानकर निर्णय करना। शास्त्र बुद्धि रखना।

8. विद्या—आत्मोपासना ही विद्या है। आत्मा, अनात्मा का विचार, जिस ज्ञान के माध्यम से किया जा सके, वही विद्या है। विद्या बहुज्ञ बनाती है।

9. सत्याचरण—सदैव सत्यबोलना और सत्य का अनुसरण करना ही सत्याचरण है। सत्य में ईश्वर का निवास है, ऐसा जानना।

10. अक्रोध—किसी भी स्थिति में क्रोध के वशीभूत न हो, भले ही कोई कितना ही अपकार कर दे।

जिस मनुष्य के अंतःकरण में धर्म की ये दस बातें अंकित होंगी, वह धर्म-पथ से कभी भी च्युत न हो पाएगा।

वैष्णव धर्म मंत्र

(धनावंशी स्वामियों के लिए अति उपयोगी)

कंठीमाला धारण मंत्र

तुलसी काष्ठ संभूते माले विष्णुजन प्रिये
त्वां धारयाम्यहं कण्ठे कुरु मां रामवल्लभम्।

चरणामृत मंत्र

अकाल मृत्युहरणं सर्वव्याधि विनाशनम्।
विष्णुपादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम्।।
एकादशी व्रतं गीता गंगाम्बु तुलसीदलम्।
विष्णोः पादाम्बु नामानि मरणे मुक्तिदानि च।।
तीर्थे प्रसाद स्वीकारानन्तरं वैष्णवो द्विजः।
न हस्तक्षालनं कुर्यात न तत्राचमन क्रिया।।

शालग्राम महिमा

शालग्राम शिला पुण्या पवित्र धर्मकारिणी।
यस्या दर्शन मात्रेण ब्रह्महा शुद्धयते नरः।।
तत् गृह सर्व तीर्थानां प्रवरं श्रुतिनोदितम्।
यत्रेयं सर्वदा मूर्तिं शालग्राम शिला शुभा।।

तुलसी महिमा

पत्र पुष्पं फलम् मूलं शाखात्वसकंध संज्ञितम्।
तुलसी सम्भवं सर्वं पावनं मृतिकादिकम्।।

गोपीचंदन महिमा

ब्राह्मणो वा अथ वैश्यो वा शूद्रो वाप्यथ बाहुज।
गोपीचंदन लिप्तांगो मुच्यते ब्रह्म हत्यया।।

प्रदक्षिणा (फेरी) मंत्र

ब्रह्म हत्यादि पापानि यानि यानि महान्ति च।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिणं पदे-पदे।।

निर्माल्य महिमा (भगवान की उतरन)

कृष्णोत्तीर्णस्तु निर्माल्यैर्यो गात्रं परिमार्जयेत।
सर्व रोगैस्तथा पापैर्मुक्तो भवति षण्मुख:।।

एकादशी व्रत महिमा

वर्णानामाश्रंमाणां च सर्वेषां वर वर्णिनि।
एकादश्युपवासस्तु कर्तव्यो नात्र संशय।।

जन्माष्टमी व्रत महिमा

कृष्ण जन्माष्टमी ब्रह्मन्यतया करोति यो नर:।
अन्ते विष्णुपुरं याति कुल कोटि युतो द्विज।।

राधाष्टमी व्रत महिमा

राधा जन्माष्टमी पुण्यं तस्माच्छत गुणाधिकम्।
मेरु तुल्य सुवर्णानि दत्वा यत्फल माप्यते।।

श्री धनावंशीय सम्प्रदाय में वैराग्य के 26 गुण

निम्न 26 गुण धनावंशी स्वामियों में वैराग्य भाव प्रदीप्त करने वाले हैं—ये सन्तों-महन्तों और सामान्य सद्गृहस्थ सभी के लिए परमावश्यक हैं :

1. अभयता—सर्वथा भयमुक्त होना। संसार में मृत्यु सहित ऐसी कोई सज्ञा नहीं है, जिससे भयभीत हुआ जाए। निर्वेदमार्गी धनावंशी ठाकुरजी में विश्वास करता है, इसलिए उसे किसी प्रकार का भय नहीं है।

2. अंत:करण शुद्धि—मन, बुद्धि, चित्त आदि में दूषित भाव न आए। मन सदैव ठाकुरजी में लगा रहे।

3. ध्यानावस्था—ध्यान सदैव प्रभु में ही रहे। तत्त्व ज्ञान के लिए तत्परता रहे।

4. दान—सात्विक दान का गुण अवश्य हो। दान केवल धन से ही संभव नहीं है। इस शरीर से कई प्रकार के दान किए जा सकते हैं। गीता के सत्रहवें अध्याय में कई प्रकार के दान बताए गए हैं। धनावंशी उनका अनुकरण करे।

5. इन्द्रिय निग्रह—इन्द्रिय दमन बिना वैराग्यता संभव ही नहीं है। विषयों के प्रति लोलुपता रहेगी तो कोई वैरागी कैसे कहला सकता है ?

6. यज्ञादि—छोटा-बड़ा अग्निहोत्र अवश्य होना चाहिए। पूर्व समय में पशुधन (गाय, भैंस आदि) पालक धनावंशी दो चम्मच घृत खीरे पर अवश्य खेते थे। घृत-धूपादि का सेवन अवश्य हो।

7. स्वाध्याय—सत्शास्त्रों का अध्ययन, वाचन, सत्संगादि नहीं होगा तो उसे कौन धनावंशी वैरागी कहेगा? घरों में भी प्रभूत मात्रा में धर्मग्रंथ रहने चाहिए। धनावंशियों में धर्मग्रंथों की परंपरा रही है। बड़ी मात्रा में गीता एवं रामचरितमानस पाठी रहे हैं और किसी धनावंशी की मृत्यु होने पर सत्रहवीं तक रामचरितमानस का निरंतर अध्ययन अनिवार्य रहा है।

8. सहनशीलता—स्वधर्म पालन के मार्ग में आनेवाले कष्टों को सहना।

9. सारल्य—जीवन के हर क्षेत्र में सरलता का भाव रखना। शरीर, मन, इन्द्रियां सभी कुछ सरल भाव में रहे।

10. जीवदया—मन, वाणी, शरीर से किसी को भी कष्ट न देना तथा हरेक के प्रति दया का भाव रखना।

11. सत्यप्रियता—सत्य को ईश्वर का रूप समझ जीवन में प्राथमिकता देना। सत्य, प्रिय और हितकर बोलें।

12. क्रोध निषेध—चाहे जो हो जाए, जीवन में क्रोध को कोई अवसर व स्थान न दे।

13. अहंता-ममता का त्याग—मैं और मेरापन नहीं होगा तो संसार के प्रति मोहभाव समाप्त हो जाएगा। अहंता-ममता भगवद् अनुरागी बनने के मार्ग में बड़ी बाधा है।

14. चित्तवृत्ति निरोध—चित्त में चंचलता का भाव न रहे। चंचलता मोह जगाती है और विषयों की ओर उन्मुख करती है।

15. निंदा त्याग—किसी भी दशा में दूसरों की निंदा न की जाए। हरेक व्यक्ति में परमेश्वर का दर्शन करे।

16. प्राणि समभाव—प्रत्येक प्राणि में ईश्वर का वास है, यह स्वभाव बनाए।

17. आसक्ति रहित—विषयों के प्रति आसक्ति भाव न रहे। उपभोग में जितना अधिक मन रहेगा, आसक्ति में वृद्धि होती जाएगी।

18. निष्ठुरताका परित्याग—जीवन में कठोरता न आ पाए। ऋजुता (सरलता) का अभाव न हो।

19. शास्त्र विरुद्धता न हो—शास्त्रों में ईश्वरीय शिक्षा होती है। ईश्वर एवं शास्त्र के विरुद्ध कर्म करना पाप में परिगणित होता है।

20. व्यर्थता का बोध—मन, वाणी और शरीर से एक भी व्यर्थ कर्म न किया जाए। व्यर्थ चिंतन भी त्याज्य है।

21. ब्रह्मचर्य पालन—तेजस्वी जीवन के लिए ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है।

22. क्षमाशीलता—अपना अहित होने पर भी जो व्यक्ति क्षमा का भाव रखता है, वही श्रेष्ठ मनुष्य है।

23. धैर्यवत्ता—प्रतिकूलता में भी धैर्य का पल्लू न छोड़े। धीरज की परिधि से कभी भी कदम बाहर न रखे।

24. पवित्रता—जो बाहर-भीतर से शुद्ध और पवित्र न होगा—परमात्मा का चिंतन कैसे कर पाएगा।

25. अशत्रु भाव—किसी भी प्राणि के प्रति शत्रुता का भाव न हो।

26. अहंकार शून्यता—स्वयं में किसी भी प्रकार का अभिमान न जागे।

इन उच्च गुणों के आविर्भाव से कोई श्रेष्ठ सद्गुणी वैष्णव होने का दावा कर सकता है। इन गुणों को गीता में दैवी-सम्पदा भी कहा गया है।

धनावंशियों में बहुत वीतराग पुरुष हुए हैं, जिनमें ये सद्गुण परिव्याप्त रहे।

धनावंशियों के पंथ प्रवर्त्तक प्रभु भक्त श्री धनाजी महाराज भले ही निर्धन घर में उत्पन्न हुए, पर पत्थर में भगवान के दर्शन करने वाले समत्व योगी अर्थात समता के भाव से आप्लावित वे भक्तराज उपरोक्त सभी वैराग्य गुणों से परिपूर्ण थे तथा अपने अनुयायी धनावंशियों को भी उन्होंने यही सब गुण अपनाने का आग्रह किया। इन गुणों को अपनाने से स्वत: ही भक्ति भीतर उतरने लगती है।

धनावंशीय सम्प्रदाय—दृष्टिकोण

1. धर्म	—	वैरागी।
2. सम्प्रदाय	—	धनावंश।
3. सम्प्रदाय मान्यता	—	वैष्णवी।
4. जाति	—	धनावंशी स्वामी, साध, वैरागी।
5. सम्प्रदाय भाव	—	सत्व गुण, निर्वेद (वैराग्य)।
6. सम्प्रदाय गुरु	—	धना भगत जी।
7. आदि संबंध	—	सनकादिक ऋषि।
8. उपासना	—	ठाकुरजी (विष्णु अवतार-श्रीराम एवं श्रीकृष्ण)।
9. संबोधन, अभिवादन	—	जय ठाकुर जी की।
10. गोत्र	—	अच्युत।
11. जाति नख	—	विभिन्न।
12. धर्म परम्परा	—	अनादि काल से, आदि वैराग।
13. मण्डल	—	विभिन्न महन्त मंडल।
14. गुण	—	26 (छब्बीस)।
15. तिलक	—	ऊर्ध्वपुण्ड्र।
16. वेशभूषा	—	श्वेत वस्त्र।
17. त्याज्य	—	व्यसन मुक्ति, व्यर्थ चिंतन।
18. भोजन	—	सात्विक।
19. स्नान	—	नित्य-प्रातः।
20. स्वाध्याय ग्रंथ	—	श्रीमद्भगवद्गीता, रामचरितमानस, भक्तमाल, विष्णु सहस्रनाम, रामरक्षा स्तोत्र, भागवत पुराण, स्कंद पुराण, पद्म पुराणादि।

21. भगवद्प्रसाद	—	पंचामृत, तुलसी-पत्र, शालग्राम चरणामृत।
22. भक्ति	—	साकार सगुण वैष्णवावतार।
23. मुख्य दिवस	—	रामनवमी, जन्माष्टमी, श्री धनाजी जयंती।
24. सद्गृहस्थ उपासना	—	प्रत्येक घर में शालग्राम पूजा।
25. प्रभु स्मरण	—	प्रातः-सायं, संध्यावंदन आवश्यक, यों दिन-भर प्रभु पूजें।
26. जुड़ाव	—	नैमितिक सत्संग से जुड़ाव।
27. सत्कार	—	स्वजातीय जन एवं सभी अतिथियों का।
28. तत्परता	—	समाज हित के कार्यों में।
29. व्रतोपवास	—	एकादशी, पूर्णिमा, अनंत चतुर्दशी सहित विभिन्न पर्व।
30. मुक्ति कामना	—	सामीप्य, सारुप्य, सायुज्य, सालोक्य।
31. मंत्र	—	रामाय नमः, कृष्णाय नमः ॐ नमो भगवदे वासुदेवाय नमः।
32. धारणीय	—	तिलक (ऊर्ध्वपुण्ड्र) तुलसी काष्ठ की कंठमाला, शिखा (चोटी रखना), गो-खुर।
33. भक्तिस्वरूप	—	नवधा।
34. दीक्षा	—	मण्डलीय महन्त द्वारा।
35. निषेद	—	सूतक।
36. पूजन	—	द्वियाम, धूप-दीप, निराजन, नैवैद्य सहित।
37. भोग	—	शालग्राम को बाल भोग।
38. प्रणाम	—	भूमिष्ठ होकर, दण्डवत।
39. भजन	—	नित्य प्रभु भजन।
40. आंतरिक लक्षण	—	निरभिमानी, शील, संतोष, सद्वक्ता, मिष्ठभाषी, सद्ज्ञानी, सद्व्यवहार।
41. कुलाभिमान	—	सदैव धनावंशी के साथ न्यात व्यवहार की दृढ़प्रतिज्ञा।

42. स्मरण — श्रीराम, श्रीकृष्ण नामोच्चार।
43. स्वकांक्षी — ऊर्ध्व गति।
44. आरती — पंचारति।
45. भोजन नियम — भोजन पूर्व पंच ग्रास टालना, अल्प आहारी।
46. प्राण त्याग प्रयास — दसवें द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) से।
47. पंचतत्त्व विसर्जन स्थल— मुक्तिधाम।
48. अंतिम पार्थिव यात्रा — काष्ठ वैकुंठी में।
49. अंतिम संस्कार — अग्नि संस्कार।
50. तप्त भात — शोक विछिन्नता। अग्नि संस्कार के तुरंत बाद चावल का भोजन कर शोक का परित्याग। यह मानना कि एक जीव का परमात्मा में विलय हो गया।
51. स्वर्गोपरांत दिवस — 17 दिवस (सतरही)।
52. सतरह दिवस — 17 दिनों में निरंतर रामचरितमानस एवं हरिनाम संकीर्तन। धनावंशी गरुड़ पुराण का पाठ नहीं करते।

उपरोक बावन चीजें, धनावंश सम्प्रदाय को एक शिष्ट एवं अलग पहचान वाला सम्प्रदाय सिद्ध करती है।

वैष्णव अवतार

वैष्णवों में परब्रह्म के लीलावतार, पुरुषावतार, अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार, स्वरूपावतार, धर्मावतार, अर्चावतार आदि अनेक अवतार माने गए हैं। भगवान का अवतार दिव्य और ऐच्छिक होता है। गीता में कहा गया है—'जन्म कर्म च दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वत:।

धनाजी ने उस विष्णु के धर्मावतार के रूप में हमें संबोधित एवं वैरागी बनने के लिए प्रेरित किया। उनके आराध्य ठाकुरजी थे। हमें धनावंशीय सम्प्रदाय के प्रति निष्ठा रखनी चाहिए।

वैष्णव चतु: सम्प्रदाय के दर्शन

1. श्री सम्प्रदाय—आचार्य रामानुजाचार्य—दक्षिण में, फिर उत्तर में रामानंदाचार्य-दर्शन—विशिष्टाद्वैत।

2. रुद्र सम्प्रदाय—आचार्य विष्णु स्वामी, दर्शन—शुद्धाद्वैत। पुष्टिकर सम्प्रदाय के वल्लभाचार्य भी इसी में हुए।

3. ब्रह्म सम्प्रदाय—आचार्य मध्वाचार्य, दर्शन—द्वैतवाद।

4. सनकादिक सम्प्रदाय—आचार्य निम्बार्काचार्य, दर्शन—द्वैताद्वैत।

श्री विष्णु

भारतीय धर्म साधना में भगवान विष्णु का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। वैदिक देवताओं में विष्णु प्रमुख देव हैं। विष्णु को मानने के कारण हम वैष्णव हैं।

स्मार्त पंच देव सूची

1. गणेश 2. दुर्गा 3. विष्णु 4. शिव 5. सूर्य।

तैंतीस देवता सूची (तैंतीस कोटि देवता)

1. बारह आदित्य 2. ग्यारह रुद्र 3. आठ वसु 4. द्यौस 5. पृथ्वी।

कर्मसाक्षी देवता (जो हर समय आपके द्वारा संपादित कर्म को देखते रहते हैं।)

1. अग्नि 2. आकाश 3. काल 4. चन्द्र 5. जल 6. पृथ्वी 7. यम 8. वायु 9. सूर्य।

वैष्णव सम्प्रदाय

1. कृष्ण पूजक 2. राम पूजक 3. नारायणीय धर्म 4.भागवत धर्म 5. भागवत सम्प्रदाय 6. वैष्णव धर्म 7. वैष्णवाचार।

चार वैष्णव सम्प्रदाय

1. माधव सम्प्रदाय 2. रुद्र सम्प्रदाय 3. श्री सम्प्रदाय 4. सनक सम्प्रदाय

इन चारों को चतुस्सम्प्रदाय भी कहते हैं। चारों के बावन आचार्य द्वारे हैं।

श्रौत सम्प्रदाय

वेद सम्मत, वेदानुकूल, आर्ष, वेदानुमोदित, श्रुतिमूलक, श्रौत

वैष्णव स्मृति

18 स्मृतियों में वैष्णव धर्मशास्त्र के रूप में 'वैष्णव स्मृति' भी है। इसमें भगवान विष्णु द्वारा पृथ्वी को दिया गया कल्याणकारी उपदेश है। यह वैष्णव धर्मशास्त्र कहलाता है। यह सूत्रों—श्लोकों के रूप में उपनिबद्ध है। श्रीमद् भगवद्गीता की भांति इसे भी भगवद्वाणी कहा गया है, इसमें 100 अध्याय हैं।

श्री सम्प्रदाय

'श्री सम्प्रदाय' की प्रवृतिका जगद्जननी श्री सीताजी हैं। उन्होंने सबसे पहले वैष्णवता का उपदेश श्री हनुमानजी को दिया। इस कारण इस सम्प्रदाय का नाम 'श्री सम्प्रदाय' पड़ा। बाद में इस सम्प्रदाय को रामानंदजी ने अपनाया। श्री रामानंदजी ने अपने शिष्यों को आखरी प्रवचन के रूप में एक ही उपदेश दिया कि—'सब शास्त्रों का सार एक मात्र भगवद् स्मरण है।'

भक्तमाल

'भक्तमाल को वैष्णव समुदाय का कण्ठहार कहा जाता है। विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में श्री कृष्णदास पयहारी के पोता चेला नाभादासजी (नारायणदासजी) ने रैवासा में बैठकर 'भक्तमाल' की रचना की। इसमें समस्त भक्तों के चरित्र हैं। प्रियादासजी सहित अनेक भक्तों ने इस पद्यमय रचना की टीकाएँ लिखीं। धनावंशियों में तुलसी की पेटिका में भक्तमाल बंद कर कंठहार के रूप में पहनने की परंपरा भी है।

दीक्षा मंत्र

गुरु द्वारा दिया गया दीक्षा मंत्र कल्याणकारी होता है। दीक्षित होने के बाद सम्पूर्ण जीवन वह मंत्र हमारे पिंड में गुंजायमान रहना चाहिए।

श्री सम्प्रदाय के बहोत्तर उपदेश

वैष्णवजनों के लिए बहुपयोगी ये 72 उपदेश भले ही श्री सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक श्री रामानुज स्वामी ने दिए हैं किंतु लोक में ये उन सभी सामान्य जनों के लिए हितकारी हैं जो भगवान में प्रीति रखते हैं। धनावंशीय वैरागियों को भी इस उपदेशामृत को ग्रहण कर अपना जीवन उच्चतर बनाना चाहिए।

1. गुरु एवं वैष्णव की समान भाव से सेवा करें।
2. पूर्व आचार्यों के वचनों में विश्वास रखें अर्थात् भगवान वेद व्यास एवं वाल्मीकि जैसे सन्तों के वाक्यों को अपनाएँ।
3. वैष्णव को रात-दिन इन्द्रियों का दास नहीं बनना है।
4. शास्त्रों का अध्ययन आवश्यक है।
5. आचार्यों की कृपा से ज्ञानवान बनकर शब्दादि पंच विषयों का दास न बनें।
6. शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध—ये सभी विषय जीव के विनाशक हैं।
7. पुष्प, चंदन, तांबूल आदि विषयों में वासना न रखें।
8. भगवन्न नाम संकीर्तन जैसी प्रीति भगवान के भक्तों में भी रखें।
9. भगवद्प्राप्ति के लिए महाभागवतों का आश्रय ग्रहण करें—
10. भगवान विष्णु और वैष्णवोचित कार्य को छोड़कर जो राग-द्वेष से प्रेरित होकर कार्य करता है, उसका पतन अवश्यम्भावी है।
11. वैष्णवी अनुष्ठान करें और उससे परमात्मा को प्राप्त करें।
12. महाभागवतों का आह्वान एकवचन से न करें।
13. वैष्णवों को देखते ही हाथ जोड़ें।
14. परमात्मा एवं वैष्णवों के सामने पाँव पसार कर न बैठें।
15. विष्णु मंदिर, गुरु का आवास, वैष्णवों के घर के सामने पाँव पसार कर न सोएँ।

16. ब्रह्म मुहूर्त में निद्रा त्याग कर गुरु-परम्परा का अनुसंधान करें।

17. विष्णु सन्निधि में विराजित महाभागवतों को दण्डवत साष्टांग प्रणाम करें।

18. वैष्णव भक्तों के कीर्तन से बीच में उठकर न जाएँ।

19. वैष्णवों के आगमन पर उनके स्वागतार्थ सामने जाएँ तथा उनके लौटने पर कुछ दूर उनके साथ जाएँ।

20. महात्माओं के पास न जाकर घर-घर डोलना पतनकारी है।

21. भगवान विष्णु के दिव्य विमानों को देखते ही अञ्जलि करें।

22. विष्णु का भजन-कीर्तन करने वालों को देखकर प्रसन्न होना चाहिए, उन पर आक्षेप करना महापाप है।

23. वैष्णवों की देहछाया का उल्लंघन न करें।

24. अपनी छाया का स्पर्श वैष्णवों पर न करें।

25. असंस्कृत मानवों को छूकर वैष्णवों का स्पर्श न करें।

26. दरिद्र वैष्णव का भी अपमान न करें—उसे प्रणाम करें।

27. यदि वैष्णव 'अपना दास है' ऐसा कह कर पहले प्रणाम करता है तो उसके प्रणाम का प्रत्युत्तर न दिया जाए तो यह महान अपराध है।

28. वैष्णवों की त्रुटियों को दूसरों के सम्मुख न कहें।

29. विष्णु भगवान का चरणोदक प्राकृत जनों के देखते हुए न पीएँ।

30. जो तत्त्वज्ञान रहित हैं उनका चरणोदक न पीएँ।

31. वैराग्य, भक्ति एवं ज्ञानसम्पन्न जनों का सान्निध्य ग्रहण करें।

32. ज्ञान अनुष्ठान से युक्त एवं सदाचार सम्पन्न वैष्णव के चरणों में प्रणाम करें।

33. ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, शील सदाचार सम्पन्न वैष्णव के प्रति प्रीति का अभ्यास करें।

34. भगवान के दिव्य देश (मंदिर) में प्राकृत जनों का आदर करें।

35. भगवान के प्रसाद में ओछी बुद्धि न रखें।

36. वैष्णवों की सन्निधि में अपने गुणों का गान न करें। दूसरों का अपमान न करें।

37. दिन में एक घड़ी अपने गुरु का गुणगान करें।

38. देहाभिमानियों का संग न करें।

39. श्री वैष्णवों के चिह्न धारण कर विषयीयों का संग न करें।

40. जो बुरे विचारों वाले हैं उनके संग सम्भाषण न करें।

41. वैष्णवों के साथ सदा ही वार्तालाप करें।

42. वैष्णवों की निंदा करनेवालों से आँखें भी न मिलाएँ।

43. जो क्रूर हैं तथा गुरुपराधी हैं, उनको देखें भी नहीं।

44. जो महात्मा अष्टाक्षर मंत्र में प्रीति रखते हैं, उनका संग करें।

45. संसार में आसक्ति रखनेवालों का संग न करें।

46. विशुद्ध ज्ञानी सन्तों का विशेष संग करें।

47. जो अर्थार्थी हैं उनका साथ न करें।

48. जो भगवद्भक्ति एवं भगवद्भक्तों में निष्ठा रखते हैं उनका साथ करें।

49. जो कोई वैष्णव तिरस्कार कर दे, उसके अपकार का स्मरण न करके मौन रहें।

50. जो धर्म विरुद्ध कार्य हो, वह चाहे महाफल देता हो, कदापि न करें।

51. भगवान के भोग लगाए बिना कोई भी वस्तु न खाएँ।

52. पुष्प, चंदन, ताम्बूल, वस्त्र, जल और फल परमात्मा को समर्पण किए बिना कभी धारण न करें।

53. अदृष्ट अन्न सेवन करें। अपनी देह के प्रिय पदार्थ भगवन् को अर्पण न करें।

54. शास्त्र विहित भोग भगवान् को अर्पित करें।

55. विष्णु (भगवान) को अर्पित अन्न-पानी एवं सुगंधित पदार्थों में प्रसाद बुद्धि करें—भोगबुद्धि नहीं।

56. सेवाभाव से कार्यों को करें।

57. महा भागवतों के अपचार को छोड़कर अन्य आत्मविनाश का कारण नहीं है।

58. मन्त्रार्थ निष्ठ महात्मा के मुखोल्लास के अतिरिक्त अन्य मोक्ष का कारण नहीं है।

59. विष्णु भक्तों की पूजा के अतिरिक्त अन्य पुरुषार्थ नहीं है।

60. विष्णु भक्तों में द्वेष रखने से अतिरिक्त अन्य आत्मनाश का कारण नहीं है।

61. भगवान् की प्रतिमा में शिलाबुद्धि, गुरु में नरबुद्धि, वैष्णव में जातिबुद्धि, चरणोदक में जलबुद्धि, भगवान के नाम में सामान्य बुद्धि नारकीय है।

62. भगवान् की पूजा से भी श्रेष्ठ भगवद् भक्तों का आराधन है।

63. भगवान् के अपमान से बढ़कर भगवद् भक्तों का अपमान है।

64. भगवान् के चरणामृत से बढ़कर भगवद् भक्तों का चरणामृत है।

65. अधिकारी व्यक्ति को अनुकूल, प्रतिकूल और उदासीन का सही अर्थ समझना चाहिए।

66. वैष्णवों के दर्शन पर प्रसन्न होना।

67. संत रुचि से ज्ञान स्वीकार, इससे भगवद् सेवा में रुचि, भगवद् रुचि से भागवदों में रुचि, संत सेवा उद्धार करती है।

68. वैष्णव कार्यों का भार अपने माथे पर न रखें, भगवद् आत्म समर्पण से सब यथेष्ट होता है।

69. वैष्णवों को पांच सेवा कार्य आवश्यक हैं : 1. श्रीभाष्य का प्रचार 2. दिव्य प्रबंधों का प्रचार 3. मंदिर सेवा 4. प्रभु में नित्य वास 5. किसी महाभागवत की सेवा।

70. वैष्णवों के सत्संग से सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र की प्राप्ति।

71. अपनी चित्तवृत्ति को गुरु प्रमाण से भगवान् में लगा दें।

72. भागवतों के दिए प्रसाद को न त्यागें।

ये सभी सदुपदेश धनावंशी स्वामियों के लिए बहुत उपयोगी हैं। इन्हें अपना कर कोई भी व्यक्ति अपनी आत्मोन्नति सफलतापूर्वक कर सकता है।

धनावंशी वैष्णवों की बारह प्रकार की शुद्धि और पाँच प्रकार की पूजा

पार्वती ने कहा—भगवन्! वैष्णवों का जो यथार्थ धर्म है, जिसका अनुष्ठान करके सब मनुष्य भवसागर से पार हो जाते हैं, उसका मुझसे वर्णन कीजिए।

महादेवजी ने कहा—देवि! प्रथम वैष्णवों की द्वादश प्रकार की शुद्धि बताई जाती है (दो पैर, दो हाथ, दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, एक मस्तक और अेक अंत:करण—इन बारह अंगों की शुद्धि द्वादश शुद्धि है।)। भगवान् के मंदिर को लीपना, भगवान् की प्रतिमा के पीछे-पीछे जाना तथा भक्तिपूर्वक उनकी प्रदक्षिणा करना—ये तीन कर्म चरणों की शुद्धि करने वाले हैं। भगवान् की पूजा के लिए भक्तिभाव के साथ पत्र और पुष्पों का संग्रह करना—यह हाथों की शुद्धि का उपाय है। यह शुद्धि सब प्रकार की शुद्धियों से बढ़कर है। भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण के नाम और गुणों का कीर्तन वाणी की शुद्धि का उपाय बताया गया है। उनकी कथा का श्रवण और उत्सव का दर्शन—ये दो कार्य क्रमश: कानों और नेत्रों की शुद्धि करने वाले कहे गए हैं। मस्तक पर भगवान् का चरणोदक, निर्माल्य तथा माला धारण करना—ये भगवान् के चरणों में पड़े हुए पुरुष के लिए सिर की शुद्धि के साधन हैं। भगवान् के निर्माल्यभूत पुष्प आदि को सूँघना अंत:शुद्धि तथा घ्राणशुद्धि का उपाय माना गया है। श्रीकृष्ण के युगल चरणों पर चढ़ा हुआ पत्र-पुष्प आदि संसार में एक मात्र पावन है, वह सभी अंगों को शुद्ध कर देता है।

भगवान् की पूजा पाँच प्रकार की बताई गई है; उन पाँचों भेदों को सुनो—अभिगमन, उपादान, योग, स्वाध्याय और इज्या—ये ही पूजा के पाँच प्रकार हैं; अब तुम्हें इनका क्रमश: परिचय दे रहा हूँ। देवता के स्थान को झाड़ बुहार कर साफ करना, उसे लीपना तथा पहले के चढ़े हुए निर्माल्य को दूर हटाना—'अभिगमन' कहलाता है। पूजा के लिए चंदन और पुष्पादि के संग्रह का नाम 'उपादान' है। अपने साथ अपने इष्टदेव की आत्मभावना करना अर्थात् मेरा इष्टदेव मुझसे भिन्न नहीं है, वह मेरा ही

आत्मा है; इस तरह की भावना को दृढ़ करना 'योग' कहा गया है। इष्टदेव के मंत्र का अर्थानुसंधानपूर्वक जप करना 'स्वाध्याय' है। सूक्त और स्तोत्र आदि का पाठ, भगवान् का कीर्तन तथा भगवत्-तत्त्व आदि का प्रतिपादन करने वाले शास्त्रों का अभ्यास भी 'स्वाध्याय' कहलाता है। अपने आराध्य देव की यथार्थ विधि से पूजा करने का नाम 'इज्या' है। सुव्रते! यह पाँच प्रकार की पूजा मैंने तुम्हें बतायी। यह क्रमशः सार्ष्टि, सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य और सारूप्य नामक मुक्ति प्रदान करने वाली है।

प्रत्येक धनावंशी स्वामी इन बारह प्रकार की शुद्धि का खयाल कर उपरोक्त पांचों प्रकार की भगवद् पूजा को निष्पन्न कर सकता है। इसके लिए आपको मंदिर का पुजारी होना आवश्यक नहीं है। यह तो तय है कि प्रत्येक धनावंशी स्वामी के घर पर एक छोटा पूजनगृह अवश्य होता है। उस पवित्र स्थल पर विराजित होकर आप उपरोक्त पांचों प्रकार की पूजा को निष्पन्न कर सकते हैं।

भगवान् विष्णु की महिमा, उनकी भक्ति के भेद तथा अष्टाक्षर मंत्र के स्वरूप एवं अर्थ का निरूपण

राजा दिलीप ने कहा—भगवन्! हरिभक्तिमयी सुधा से पूर्ण आपके वचनों को सुनने से मुझे तृप्ति नहीं होती—अधिकाधिक सुनने की इच्छा बढ़ती जाती है। अतः इस विषय में जितनी बातें हों, सब बताइए। मुनिश्रेष्ठ! इस भयानक संसार रूपी वन में आध्यात्मिक आदि तीनों तापों के दावानल की महाज्वाला से संतप्त हुए मनुष्यों के लिए श्रीहरिभक्तिमयी सुधा के समुद्र को छोड़कर दूसरा कौनसा आश्रय हो सकता है? महामुने! मुनिजन जिनकी सदा उपासना करते हैं, परमात्मा की भक्ति के उन विभिन्न रूपों को इस समय विस्तार के साथ बतलाइए।

वसिष्ठजी ने कहा—राजेन्द्र! तुम्हारा प्रश्न बहुत उत्तम है। यह मनुष्यों को संसार-सागर के पार उतारने वाला है। भगवान् विष्णु की भक्ति नित्य सुख देने वाली है। प्राचीन काल में कैलास पर्वत के शिखर पर भगवती पार्वतीजी ने लोकपूजित भगवान् शंकर से इसी महान प्रश्न को पूछा था।

पार्वतीजी बोलीं—देवदेव! त्रिपुरासुर को मारने वाले महादेव! सुरेश्वर! मुझे विष्णुभक्ति का उपदेश कीजिए, जो सब प्राणियों को मुक्ति देने वाली है।

श्री महादेवजी ने कहा—सब लोकों का हित चाहने वाली महादेवी! तुम्हें साधुवाद। तुम जो भगवान् लक्ष्मीपति के उत्तम माहात्म्य के विषय में प्रश्न करती हो, यह बहुत ही उत्तम है। पार्वती! तुम धन्य हो, पुण्यात्मा हो और भगवान् विष्णु की भक्त हो। तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हारे शील, रूप और गुणों से सदा ही संतुष्ट रहता हूँ। गिरिजे! मैं उत्तम भगवद्भक्ति, भगवान् विष्णु के स्वरूप तथा उनके मंत्रों के विधान का वर्णन करता हूँ; सुनो। भगवान् नरायण ही परामार्थ तत्त्व हैं। वे ही विष्णु, वासुदेव, सनातन, परमात्मा, परब्रह्म, परम ज्योति, परात्पर, अच्युत, पुरुष, कृष्ण, शाश्वत, शिव, ईश्वर, नित्य, सर्वगत, स्थाणु, रुद्र, साक्षी, प्रजापति, यज्ञ, साक्षात, यज्ञपति, ब्रह्मणस्पति,

हिरण्यगर्भ, सविता, लोककर्ता, लोकपालक और विभु आदि नामों से पुकारे जाते हैं। वे भगवान् विष्णु 'अ' अक्षर के वाच्य, लक्ष्मी से संपन्न, लीला के स्वामी तथा सबके प्रभु हैं। अन्न से जिसकी उत्पत्ति होती है, उस जीव-समुदाय के तथा अमृत्व (मोक्ष) के भी स्वामी हैं। वे विश्वात्मा सहस्रों मस्तक वाले, सहस्रों नेत्र वाले और सहस्रों पैर वाले हैं। उनका कभी अन्त नहीं होता। इसलिए वे अनन्त कहलाते हैं। लक्ष्मी के पति होने से श्रीपति नाम धारण करते हैं। योगिजन उनमें रमण करते हैं, इसलिए उनका नाम राम है। वे समस्त गुणों को धारण करते हैं, तथापि निर्गुण हैं। महान हैं। वे समस्त लोकों के ईश्वर, श्रीमान्, सर्वज्ञ तथा सब ओर मुख वाले हैं। पार्वती! उन लोकप्रधान जगदीश्वर भगवान् वासुदेव के माहात्म्य का जितना मुझसे हो सकेगा, वर्णन करता हूँ। वास्तव में तो मैं, ब्रह्माजी तथा संपूर्ण देवता मिलकर भी उसका पूरा वर्णन नहीं कर सकते। संपूर्ण उपनिषदों में भगवान् की महिमा का ही प्रतिपादन है तथा वेदांत में उन्हीं को परमार्थ तत्त्व निश्चित किया गया है।

अब मैं भगवान् की उपासना के पृथक्-पृथक् भेद बतलाता हूँ, सुनो। भगवान् का अर्चन, उनके मंत्रों का जप, स्वरूप का ध्यान, नामों का स्मरण, कीर्तन, श्रवण, वंदन, चरण-सेवन, चरणोदक-सेवन, उनका प्रसाद ग्रहण करना, भगवद्भक्तों की सेवा, द्वादशीव्रत का पालन तथा तुलसी का वृक्ष लगाना—यह सब देवाधिदेव भगवान् विष्णु की भक्ति है, जो भव-बंधन से छुटकारा दिलाने वाली है। संपूर्ण देवताओं के तथा मेरे लिए भी पुरुषोत्तम श्रीहरि ही पूजनीय हैं। ब्राह्मणों के लिए तो वे विशेष रूप से पूज्य हैं। अत: ब्राह्मणों को उचित है कि वे प्रतिदिन विधिपूर्वक श्रीहरि का पूजन करें।

श्रेष्ठ द्विज को अष्टाक्षर मंत्र का अभ्यास करना चाहिए। प्रणव को मिलाकर ही वह मंत्र अष्टाक्षर कहा गया है। मंत्र है—'ॐ नमो नारायणाय'। इस प्रकार इस मंत्र को अष्टाक्षर जानना चाहिए। यह सब मनोरथ की सिद्धि और सब दु:खों का नाश करने वाला है। इसे सर्वमंत्रस्वरूप और शुभकारक माना गया है। इस मंत्र के 'ऋषि' और 'देवता' लक्ष्मीपति भगवान् नारायण ही हैं। 'छंद' दैवी गायत्री है। प्रणव को इसका 'बीज' कहा गया है। भगवान् से कभी विलग न होने वाली भगवती लक्ष्मी को ही विद्वान पुरुष इस मंत्र की 'शक्ति' कहते हैं। इस मंत्र का पहला पद 'ॐ', दूसरा पद 'नम:' और तीसरा पद 'नारायणाय' है। इस प्रकार यह तीन पदों का मंत्र बतलाया गया है। प्रणव में तीन अक्षर हैं—अकार, उकार तथा मकार। प्रणव को तीनों वेदों का स्वरूप बतलाया गया है। यह ब्रह्म का निवास स्थान है। अकार से भगवान् विष्णु का

और उकार से भगवती लक्ष्मी का प्रतिपादन होता है। मकार से उन दोनों के दासभूत जीवात्मा का कथन है, जो पचीसवां तत्त्व है।

किसी-किसी के मत में उकार अवधारणवाची है। इस पक्ष में भी श्रीतत्त्व का प्रतिपादन उकार के ही द्वारा किया जाता है। जैसे सूर्य की प्रभा सूर्य से कभी अलग नहीं होती, उसी प्रकार भगवती लक्ष्मी श्रीविष्णु से नित्य संयुक्त रहती हैं। अकार से जिनका बोध कराया जाता है, वे लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु, कारण के भी कारण हैं। संपूर्ण जीवात्माओं के प्रधान अंगी हैं। जगत् के बीज हैं और परमपुरुष हैं। वे ही जगत् के कर्ता, पालक, ईश्वर और लोक के बंधु-बांधव हैं। तथा उनकी मनोरमा पत्नी लक्ष्मी संपूर्ण जगत् की माता, अधीश्वरी और आधार-शक्ति हैं। वे नित्य हैं और श्रीविष्णु से कभी विलग नहीं होतीं। उकार से उन्हीं के तत्त्व का बोध कराया जाता है। मकार से इन दोनों के दास जीवात्मा का कथन है, जिसे विद्वान् पुरुष क्षेत्रज्ञ कहते हैं। यह ज्ञान का आश्रय ज्ञानरूपी गुण से युक्त है। इसे चित्त और प्रकृति से परे माना गया है। यह अजन्मा, निर्विकार, एकरूप, स्वरूप का भागी, अणु, नित्य, अव्यापक, चिदानंद-स्वरूप 'अंह' पद का अर्थ, अविनाशी, क्षेत्र (शरीर) का अधिष्ठाता, भिन्न-भिन्न रूप धारण करने वाला, सनातन जलाने, काटने, गलाने और सुखाने में न आने वाला तथा अविनाशी है। ऐसे गुणों से युक्त जो जीवात्मा है, वह सदा परमात्मा का अंगभूत है। वह केवल श्रीहरि का ही दास है और किसी का नहीं। इस प्रकार मध्यम अक्षर उकार के द्वारा जीव के दासभाव का ही अवधारण (निश्चय) किया जाता है। इस तरह प्रणव का अर्थ जानना चाहिए। प्रणव का अर्थ स्पष्ट हो जाने पर शेष मंत्र के द्वारा परमात्मा के दासभूत जीवन की परतंत्रता ही सिद्ध होती है। वह कभी स्वतंत्र नहीं होता। अत: अपनी स्वतंत्रता के महान अहंकार को मन से दूर कर देना चाहिए। अहंकार-बुद्धि से जो कर्म किया जाता हे, उसका भी निषेध है।

'मनस्'—मन शब्द में जो मकार है, वह अहंकार का वाचक है और नकार उसका निषेध करने वाला है। अत: मन से ही जीव के लिए अहंकार-त्याग की प्रेरणा मिलती है। अहंकार से युक्त मनुष्य को तनिक भी सुख नहीं मिलता। जिसका चित्त अहंकार से मोहित है, वह घोर अंधकार से पूर्ण नरक में गिरता है। इसलिए मन के द्वारा क्षेत्र की स्वतंत्रता का निषेध किया गया है। वह भगवान् के अधीन है। भगवान् के अधीन ही उसका जीवन है। अत: चेतन जीवात्मा किसी साधन का स्वतंत्र कर्ता नहीं है। ईश्वर के संकल्प से ही संपूर्ण चराचर जगत् अपने-अपने व्यापार में लगा है। अत:

जीव अपने सामर्थ्य पर निर्भर रहना छोड़ दे। ईश्वर के सामर्थ्य से उसके लिए कुछ भी अलभ्य नहीं है। अपना सारा भार भगवान् लक्ष्मीपति को सौंपकर उनकी आराधना के ही कर्म करे। 'श्रीहरि परमात्मा हैं। मैं सदा उनका दास बन रहूँ।' इस भाव से स्वेच्छापूर्वक अपने आत्मा को ईश्वर की सेवा में लगाना चाहिए। इस प्रकार मन के द्वारा अहंता, ममता का त्याग करना उचित है। देह में जो अहंबुद्धि होती है, वही संसार-बंधन का मूल कारण है। वही कर्मों के बंधन में डालती है। अत: विद्वान् पुरुष अहंकार को त्याग दे।

पार्वती! अब मैं 'नारायण' शब्द की व्याख्या करता हूँ। शुभे! नर अर्थात् जीवों के समुदाय को नार कहते हैं। उन 'नार' शब्दवाच्य जीवों के अयन—गति अर्थात् आश्रय परम पुरुष श्रीविष्णु हैं। अत: वे नारायण कहलाते हैं। अथवा नार यानी जीव उन भगवान् के अयन—निवासस्थान हैं। इसलिए भी उन्हें नारायण कहा जाता है। जड़-चेतनरूप जितना भी जगत् देखा या सुना जाता है, उसको पूर्णरूप से व्याप्त करके भगवान् नित्य विराजमान हैं। इसलिए उनका नाम नारायण है। जो कल्प के अंत में संपूर्ण जगत् को अपना ग्रास बनाकर अपने ही भीतर धारण करते हैं और सृष्टि के आरंभकाल में पुन: सब की सृष्टि करते हैं, वे भगवान् नारायण कहे गए हैं। संपूर्ण चराचर जगत् नार कहलाता है। उसको जिनका संग नित्य प्राप्त है अथवा उसे जिनके द्वारा उत्तम गति प्राप्त होती है, उन्हें नारायण कहते हैं। जल से फेन की भाँति जिनसे संपूर्ण लोक उत्पन्न होते और पुन: जिनमें लीन हो जाते हैं, उन भगवान् को नारायण कहा गया है। जो अविनाशी पद, नित्यस्वरूप तथा नित्यप्राप्त भोगों से संपन्न हैं, साथ ही जो संपूर्ण जगत् का शासन करने वाले हैं, उन भगवान् का नाम नारायण है। दिव्य, एवं, सनातन और अपनी महिमा से कभी च्युत न होने वाले श्रीहरि ही नारायण कहलाते हैं। द्रष्टा और दृश्य, श्रोता और श्रोतव्य, स्पर्श करने वाला और स्पृश्य, ध्याता और ध्येय, वक्ता और वाच्य तथा ज्ञाता और ज्ञेय—जो कुछ भी जड़-चेतनमय जगत् है, वह सब लक्ष्मीपति श्रीहरि हैं, जिन्हें नारायण कहा गया है। वे सहस्रों मस्तक वाले, अंतर्यामी पुरुष, सहस्रों नेत्रों से युक्त तथा सहस्रों चरणों वाले हैं। भूत और वर्तमान—सब कुछ नारायण श्रीहरि ही हैं। अन्न से जिसकी उत्पत्ति होती है, उस प्राणिसमुदाय तथा अमृत्व—मोक्ष के भी स्वामी वे ही हैं। वे ही विराट् पुरुष हैं। वे अंतर्यामी पुरुष ही श्रीविष्णु, वासुदेव, अच्युत, हरि, हिरण्यमय, भगवान्, अमृत, शाश्वत तथा शिव आदि नामों से पुकारे जाते हैं। वे ही संपूर्ण जगत् के पालक और सब लोकों पर शासन करने

वाले ईश्वर हैं। वे हिरण्यमय अंड को उत्पन्न करने के कारण हिरण्यगर्भ और सबको जन्म देने के कारण सविता हैं। उनकी महिमा का अंत नहीं है, इसलिए वे अनंत कहलाते हैं। वे महान ऐश्वर्य से संपन्न होने के कारण महेश्वर हैं। उन्हीं का नाम भगवान् (षड्विध ऐश्वर्य से युक्त) और पुरुष है। 'वासुदेव' शब्द बिन किसी उपाधि के सर्वात्मा का बोधक है। उन्हीं को ईश्वर, भगवान् विष्णु, परमात्मा, संसार के सुहृद, चराचर प्राणियों के एक मात्र शासक और यतियों की परमगति कहते हैं। जिन्हें वेद के आदि में स्वर कहा गया है, जो वेदांत में भी प्रतिष्ठित हैं तथा जो प्रकृतिलीन पुरुष से भी परे हैं, वे ही महेश्वर कहलाते हैं। प्रणव का जो अक्षार है, वह विष्णु ही हैं और जो विष्णु हैं, वे ही नारायण हरि हैं। उन्हीं को नित्यपुरुष, परमात्मा और महेश्वर कहते हैं। मुनियों ने उन्हें ही ईश्वर नाम दिया है। इसलिए भगवान् वासुदेव में उपाधिशून्य 'ईश्वर' शब्द की प्रतिष्ठा है। सनातन वेदवादियों ने उन्हें आत्मेश्वर कहा है। इसलिए वासुदेव में महेश्वरत्व की भी प्रतिष्ठा है। वे त्रिपाद विभूति तथा लीला के भी अधीश्वर हैं। जो श्री, भू तथा लीला देवी के स्वामी हैं, उन्हीं को अच्युत कहा गया है। इसलिए वासुदेव में सर्वेश्वर शब्द की भी प्रतिष्ठा है। जो यज्ञ के ईश्वर, यज्ञस्वरूप, यज्ञ के भोक्ता, यज्ञ करने वाले, विभु, यज्ञरक्षक और यज्ञपुरुष हैं, वे भगवान् ही परमेश्वर कहलाते हैं। वे ही यज्ञ के अधीश्वर होकर समस्त हव्य-कव्यों का भोग लगाते हैं। वे ही इस लोक में अविनाशी श्रीहरि एवं ईश्वर कहलाते हैं। उनके निकट आने से समस्त राक्षस, असुर और भूत तत्काल भाग जाते हैं। जो विराट्रूप धारण करके अपनी विभूति से तीनों लोकों को तृप्त करते हैं, वे पाप को हरने वाले श्रीजनार्दन ही परमेश्वर हैं। जब पुरुषरूपी हवि के द्वारा देवताओं ने यज्ञ किया, तब उस यज्ञ से नीचे-ऊपर दोनों ओर दाँत रखने वाले जीव उत्पन्न हुए। सबको होमने वाले उस यज्ञ से ही ऋग्वेद और सामवेद की उत्पत्ति हुई। उसी से घोड़े, गौ और पुरुष आदि उत्पन्न हुए। उस सर्वयज्ञमय पुरुष श्रीहरि के शरीर से स्थावर-जंगमरूप समस्त जगत् की उत्पत्ति हुई। उनके मुख, बाहु, ऊरु और चरणों से क्रमश: ब्राह्मण आदि वर्ण उत्पन्न हुए। भगवान् के पैरों से पृथ्वी और मस्तक से आकाश का प्रादुर्भाव हुआ। उनके मन से चंद्रमा, नेत्रों सें सूर्य, मुख से अग्नि, सिर से द्युलोक, प्राण से सदा चलने वाले वायु, नाभि से आकाश तथा संपूर्ण चराचर जगत् की उत्पत्ति हुई। सब कुछ श्रीविष्णु से ही प्रकट हुआ है, इसलिए वे सर्वव्यापी नारायण सर्वमय कहलाते हैं। इस प्रकार संपूर्ण जगत् की सृष्टि करके श्रीहरि पुन: उसका संहार करते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे मकड़ी अपने से

प्रकट हुए तंतुओं को पुन: अपने में ही लीन कर लेती है। ब्रह्मा, इंद्र, रुद्र, वरुण और यम—सभी देवताओं को अपने वश में करके उनका संहार करते हैं; इसलिए भगवान् को हरि कहा जाता है। जब सारा जगत् प्रलय के समय एकार्णव में निमग्न हो जाता है, उस समय वे सनातन पुरुष श्रीहरि संसार को अपने उदर में स्थापित करके स्वयं मायामय वटवृक्ष के पत्र पर शयन करते हैं। कल्प के आरम्भ में एक मात्र सर्वव्यापी एवं अविनाशी भगवान् नारायण ही थे। उस समय न ब्रह्मा थे, न रुद्र। न देवता थे, न महर्षि। ये पृथ्वी, आकाश, चंद्रमा, सूर्य, नक्षत्र लोक तथा महतत्त्व से आवृत ब्रह्मांड भी नहीं थे। श्रीहरि ने समस्त जगत् का संहार करके सृष्टिकाल में पुन: उसकी सृष्टि की; इसलिए उन्हें नारायण कहा गया है। पार्वती! 'नारायणाय' इस चतुर्थ्यन्त पद से जीव के दास भाव का प्रतिपादन होता है। ब्रह्मा आदि संपूर्ण जगत् भगवान् का दास ही है। पहले इस अर्थ को समझ कर पीछे मंत्र का प्रयोग करना चाहिए। मंत्रार्थ को न जानने से सिद्धि नहीं प्राप्त होती।

प्रत्येक धनावंशी स्वामी को अपने सुपूज्य ठाकुरजी के इस विपुल और अनन्त स्वरूप को ज्ञानचक्षु खोल कर जानना है। पुराण पुरुष हरि की व्यापकता को यह जीव नहीं जान पाता है, तब तक वह अज्ञान रूपी माया से आवृत्त ही रहता है।

श्रीविष्णु और लक्ष्मी के स्वरूप, गुण, धाम एवं विभूतियों का वर्णन

पार्वतीजी बोलीं—देवेश्वर! आप मंत्रों के अर्थ और पदों की महिमा को विस्तार के साथ बतलाइए। साथ ही ईश्वर के स्वरूप, गुण, विभूति, श्रीविष्णु के परम धाम तथा व्यूह-भेदों का भी यथार्थरूप से वर्णन कीजिए।

महादेवजी ने कहा—देवि! सुनो—मैं परमात्मा के स्वरूप, विभूति, गुण तथा अवस्थाओं का वर्णन करता हूँ। भगवान् के हाथ, पैर और नेत्र संपूर्ण विश्व में व्याप्त हैं। समस्त भुवन और श्रेष्ठ धाम भगवान् में ही स्थित हैं। वे महर्षियों का मन अपने में स्थिर करके विराजमान हैं। उनका स्वरूप विशाल एवं व्यापक है। वे लक्ष्मी के पति और पुरुषोत्तम हैं। उनका लावण्य करोड़ों कामदेवों के समान है। वे नित्य तरुण किशोर-विग्रह धारण करके जगदीश्वरी भगवती लक्ष्मीजी के साथ परमपद—वैकुंठधाम में विराजते हैं। वह परम धाम ही परमव्योम कहलाता है। परमव्योम ऐश्वर्य का उपभोग करने के लिए है और यह संपूर्ण जगत् लीला करने के लिए। इस प्रकार भोगभूमि और क्रीड़ाभूमि के रूप में श्रीविष्णु की दो विभूतियाँ स्थित हैं। जब वे लीला का उपसंहार करते हैं, तब भोगभूमि में उनकी नित्य स्थिति होती है। भोग और लीला दोनों को वे अपनी शक्ति से ही धारण करते हैं। भोगभूमि या परमधाम त्रिपाद-विभूति से व्याप्त है। अर्थात् भगवद्विभूति के तीन अंशों में उसकी स्थिति है और इस लोक में जो कुछ भी है, वह भगवान् की पाद-विभूति के अंतर्गत है। परमात्मा की त्रिपाद्-विभूति नित्य और पाद-विभूति अनित्य है। परमधाम में भगवान् का जो शुभ विग्रह विराजमान है, वह नित्य है। वह कभी अपनी महिमा से च्युत नहीं होता, उसे सनातन एवं दिव्य माना गया है। वह सदा तरुणावस्था से सुशोभित रहता है। वहाँ भगवान् को भगवती श्रीदेवी और भूदेवी के साथ नित्य संयोग प्राप्त है। जगन्माता लक्ष्मी भी नित्यरूपा हैं। वे श्रीविष्ण से कभी पृथक् नहीं होतीं। जैसे भगवान् विष्णु सर्वत्र व्याप्त हैं, उसी प्रकार भगवती लक्ष्मी भी हैं। पार्वती! श्रीविष्णुपत्नी रमा संपूर्ण जगत् की

अधीश्वरी और नित्य कल्याणमयी है। उनके भी हाथ, पैर, नेत्र, मस्तक और मुख सब ओर व्याप्त हैं। वे भगवान् नारायण की शक्ति, संपूर्ण जगत् की माता और सबको आश्रय प्रदान करने वाली हैं। स्थावर-जंगम रूप सारा जगत् उनके कृपा-कटाक्ष पर ही निर्भर है। विश्व का पालन और संहार उनके नेत्रों के खुलने और बंद होने से ही हुआ करते हैं। वे महालक्ष्मी सबकी आदिभूता, त्रिगुणमयी और परमेश्वरी हैं। व्यक्त और अव्यक्त भेद से उनके दो रूप हैं। वे उन दोनों रूपों से संपूर्ण विश्व को व्याप्त करके स्थित हैं। जल आदि रस के रूप से वे ही लीलामय देह धारण करके प्रकट होती हैं। लक्ष्मीरूप में आकर वे धन प्रदान करने की अधिकारिणी होती हैं। ऐसे स्वरूपवाली लक्ष्मीदेवी श्रीहरि के आश्रय में रहती हैं। संपूर्ण वेद तथा उनके द्वारा जानने योग्य जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब श्रीलक्ष्मी के ही स्वरूप हैं। स्त्रीरूप में जो कुछ भी उपलब्ध होता है, वह सब लक्ष्मी का ही विग्रह कहलाता है। स्त्रियों में सौंदर्य, शील, सदाचार और सौभाग्य स्थित है, वह सब लक्ष्मी का ही रूप है। पार्वती! भगवती लक्ष्मी समस्त स्त्रियों की शिरोमणि हैं, जिनकी कृपा-कटाक्ष के पड़ने मात्र से ब्रह्मा, शिव, देवराज इंद्र, चंद्रमा, सूर्य, कुबेर, यमराज तथा अग्निदेव प्रचुर ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं।

उनके नाम हैं इस प्रकार हैं—लक्ष्मी श्री, कमला, विद्या, माता, विष्णुप्रिया, सती, पद्मालया, पद्महस्ता, पद्माक्षी, पद्मसुंदरी, भूतेश्वरी, नित्या, सत्या, सर्वगता, शुभा, विष्णुपत्नी, महादेवी, क्षीरोदतनया (क्षीरसागर की कन्या), रमा, अनंतलोकनाभि (अनंत लोकों की उत्पत्ति का केंद्रस्थान), भू, लीला, सर्वसुखप्रदा, रुक्मिणी, सर्ववेदवती, सरस्वती, गौरी, शांति, स्वाहा, स्वधा, रति, नारायणवरारोहा (श्रीविष्णु की सुंदर पत्नी) तथा विष्णोर्नित्यानुपायिनी (सदा श्रीविष्णु के समीप रहने वाली)। जो प्रातःकाल उठकर इन संपूर्ण नामों का पाठ करता है, उसे बहुत बड़ी संपत्ति तथा विशुद्ध धन-धान्य की प्राप्ति होती है।

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
षन्द्रां हिरण्मयी लक्ष्मी विष्णोरनपगामिनीम्।।
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरी सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।।

(255/28-29)

'जिनके श्रीअंगों का रंग सुवर्ण के समान सुंदर एवं गौर है, जो सोने-चाँदी के हारों से सुशोभित और सबको आह्लादित करने वाली हैं, भगवान् श्रीविष्णु से जिनका

कभी वियोग नहीं होता, जो स्वर्णमयी कांति धारण करती हैं, उत्तम लक्षणों से विभूषित होने के कारण जिनका नाम लक्ष्मी है, जो सब प्रकार की सुगंधों का द्वार है, जिनको परास्त करना कठिन है, जो सदा सब अंगों से पुष्ट रहती हैं, गाय के सूखे गोबर में जिनका निवास है तथा जो समस्त प्राणियों की अधीश्वरी हैं, उन भगवती श्रीदेवी का मैं यहाँ आह्वान करता हूँ।'

ऋग्वेद में कहे हुए इस मंत्र के द्वारा स्तुति करने पर महेश्वरी लक्ष्मी ने शिव आदि सभी देवताओं को सब प्रकार का ऐश्वर्य और सुख प्रदान किया था। श्रीविष्णुपत्नी लक्ष्मी सनातन देवता हैं। वे ही इस जगत् का शासन करती हैं। संपूर्ण चराचर जगत् की स्थिति उन्हीं के कृपा-कटाक्ष पर निर्भर है। अग्नि में रहने वाली प्रभा की भाँति भगवती लक्ष्मी जिनके वक्षःस्थल में निवास करती हैं, वे भगवान विष्णु सबके ईश्वर, परम शोभा-संपन्न, अक्षर एवं अविनाशी पुरुष हैं; वे श्रीनारायण वात्सल्यगुण के समुद्र हैं। सब के स्वामी, सुशील, सुभग, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, नित्य पूर्णकाम, स्वभावतः सबके सुहृद, सुखी, दयासुधा के सागर, समस्त देहधारियों के आश्रय, स्वर्ग और मोक्ष का सुख देने वाले और भक्तो पर दया करने वाले हैं। उन श्रीविष्णु को नमस्कार है। मैं संपूर्ण देशकाल आदि अवस्थाओं में पूर्ण रूप से भगवान का दासत्व स्वीकार करता हूँ। इस प्रकार स्वरूप का विचार करके सिद्धिप्राप्त पुरुष अनायास ही दासभाव को प्राप्त कर लेता है। यही पूर्वोक्त मंत्र का अर्थ है। इसको जानकार भगवान् में भली-भाँति भक्ति करनी चाहिए। यह चराचर जगत् भगवान् का दास ही है। श्रीनारायण इस जगत् के स्वामी, प्रभु, ईश्वर, भ्राता, माता, पिता, बंधु, निवास, शरण और गति हैं। भगवान् लक्ष्मीपति कल्याणमय गुणों से युक्त और समस्त कामनाओं का फल प्रदान करने वाले हैं। वे ही जगदीश्वर शास्त्रों में निर्गुण कहे गए हैं। 'निर्गुण' शब्द से यही बताया गया है कि भगवान् प्रकृतिजन्य हेय गुणों से रहित हैं। जहाँ वेदांतवाक्यों द्वारा प्रपंच का मिथ्यात्व बताया गया है और यह कहा गया है कि यह सारा दृश्यमान जगत् अनित्य है, वहाँ भी ब्रह्मांड के प्राकृत रूप को ही नश्वर बताया गया है। प्रकृति से उत्पन्न होने वाले रूपों की ही अनित्यता का प्रतिपादन किया गया है।

महादेवि! इस कथन का तात्पर्य यह है कि लीलाविहारी देवदेव श्रीहरि की लीला के लिए ही प्रकृति की उत्पत्ति हुई है। चौदह भुवन, सात समुद्र, सात द्वीप, चार प्रकार के प्राणी तथा ऊँचे-ऊँचे पर्वतों से भरा हुआ यह रमणीय ब्रह्मांड प्रकृति से उत्पन्न हुआ है। यह उत्तरोत्तर महान दस आवरणों से घिरा हुआ है। कला-काष्ठा आदि

भेद से जो कालचक्र चल रहा है, उसी के द्वारा संसार की सृष्टि, पालन और संहार आदि कार्य होते हैं। एक सहस्र चतुर्युग व्यतीत होने पर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी का एक दिन पूरा होता है। इतने ही बड़े दिन से सौ वर्षों की उनकी आयु मानी गई है। ब्रह्माजी की आयु समाप्त होने पर सबका संहार हो जाता है। ब्रह्मांड के समस्त लोक कालाग्नि से दग्ध हो जाते हैं। सर्वात्मा श्रीविष्णु की प्रकृति में उनका लय हो जाता है। ब्रह्मांड और आवरण के समस्त भूत प्रकृति में लीन हो जाते हैं। संपूर्ण जगत् का आधार प्रकृति है और प्रकृति के आधार श्रीहरि। प्रकृति के द्वारा ही भगवान् सदा जगत् की सृष्टि और संहार करते हैं। देवाधिदेव श्रीविष्णु ने लीला के लिए जगन्मयी माया की सृष्टि की है। वही अविद्या, प्रकृति, माया और महाविद्या कहाती है। सृष्टि, पालन और संहार का कारण भी वही है। वह सदा रहने वाली है। योगनिद्रा और महामाया भी उसी के नाम हैं। प्रकृति सत्व, रज और तम—इन तीन गुणों से युक्त है। उसे अव्यक्त और प्रधान भी कहते हैं। वह लीलाविहारी श्रीकृष्ण की क्रीड़ास्थली है। संसार की उत्पत्ति और प्रलय सदा उसी से होते हैं। प्रकृति के स्थान असंख्य हैं, जो घोर अंधकार से पूर्ण हैं। प्रकृति से ऊपर की सीमा में विरजा नाम की नदी है; किंतु नीचे की ओर उस सनातनी प्रकृति की कोई सीमा नहीं है। उसने स्थूल, सूक्ष्म आदि अवस्थाओं के द्वारा संपूर्ण जगत् को व्याप्त कर रखा है। प्रकृति के विकास से सृष्टि और संकोचावस्था से प्रलय होते हैं। इस प्रकार संपूर्ण भूत प्रकृति के ही अन्तर्गत हैं। यह जो महान शून्य (आकाश) है, वह सब भी प्रकृति के ही भीतर है। इस तरह प्राकृतरूप ब्रह्मांड अथवा पादविभूति के स्वरूप का अच्छी तरह वर्णन किया गया।

गिरिराजकुमारी! अब त्रिपाद्-विभूति के स्वरूप का वर्णन सुनो। प्रकृति एवं परम व्योम के बीच में विरजा नाम की नदी है। वह कल्याणमयी सरिता वेदांगों के स्वेदजनित जल से प्रवाहित होती है। उसके दूसरे पार में परम व्योम है, जिसमें त्रिपाद्-विभूतिमय सनातन, अमृत, शाश्वत, नित्य एवं अनन्त परम धाम है। वह शुद्ध सत्त्वमय, दिव्य, अक्षर एवं परब्रह्म का धाम है। उसका तेज अनेक कोटि सूर्य तथा अग्नियों के समान है। वह धाम अविनाशी, सर्ववेदमय, शुद्ध, सब प्रकार के प्रलय से रहित, परिणामशून्य, कभी जीर्ण न होने वाला, नित्य जाग्रत, स्वप्न आदि अवस्थाओं से रहित, हिरण्यमय, मोक्षपद, ब्रह्मानंदमय, सुख से परिपूर्ण, न्यूनता-अधिकता तथा आदि-अंत से शून्य, शुभ, तेजस्वी होने के कारण अत्यंत अद्भुत, रमणीय, नित्य तथा आनंद का सागर है। श्रीविष्णु का वह परमपद ऐसे ही गुणों से युक्त है। उसे सूर्य,

चंद्रमा तथा अग्निदेव नहीं प्रकाशित करते—वह अपने ही प्रकाश से प्रकाशित है। जहाँ जाकर जीव फिर कभी नहीं लौटते, वही श्रीहरि का परम धाम है। श्रीविष्णु का वह परमधाम नित्य, शाश्वत एवं अच्युत है। सौ करोड़ कल्पों में भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मैं, ब्रह्मा तथा श्रेष्ठ मुनि श्रीहरि के उस पद का वर्णन नहीं कर सकते। जहाँ अपनी महिमा से कभी च्युत न होने वाले साक्षात् परमेश्वर श्रीविष्णु विराजमान हैं, उसकी महिमा को वे स्वयं ही जानते हैं। जो अविनाशी पद है, जिसकी महिमा का वेदों में गूढ़रूप से वर्णन है तथा जिसमें संपूर्ण देवता और लोक स्थित हैं उसे जो नहीं जानता, वह केवल ऋचाओं का पाठ करके क्या करेगा। जो उसे जानते हैं, वे ही ज्ञानी पुरुष समभाव से स्थित होते हैं। श्रीविष्णु के उस परम पद को ज्ञानी पुरुष सदा देखते हैं। वह अक्षर, शाश्वत, नित्य एवं सर्वत्र व्याप्त है। कल्याणकारी नाम से युक्त भगवान् विष्णु के उस परमधाम—गोलोक में बड़े सींगों वाली गौएँ रहती हैं तथा वहाँ की प्रजा बड़े सुख से रहा करती है। गौओं तथा पीने योग्य सुखदायक पदार्थों से उस परम धाम की बड़ी शोभा होती है। वह सूर्य के समान प्रकाशमान, अंधकार से परे, ज्योतिर्मय एवं अच्युत—अविनाशी पद है। श्रीविष्णु के उस परम धाम को ही मोक्ष कहते हैं। वहाँ जीव बंधन से मुक्त होकर अपने लिए सुखकर पद को प्राप्त होते हैं। वहाँ जाने पर जीव पुनः इस लोक में नहीं लौटते; इसलिए उसे मोक्ष कहा गया है। मोक्ष, परमपद, अमृत, विष्णुमंदिर, अक्षर, परमधाम, वैकुंठ, शाश्वतपद, नित्यधाम, परमव्योम, सर्वोत्कृष्ट पद तथा सनातन पद—ये अविनाशी परम धाम के पर्यायवाची शब्द हैं।

श्रीविष्णु-पूजन की विधि तथा वैष्णवोचित आचार

पार्वतीजी ने कहा—भगवन्! आपने श्रीहरि की वैभवावस्था का पूरा-पूरा वर्णन किया। इसमें भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्ण का चरित्र बड़ा ही विस्मयजनक है। अहो! भगवान् श्रीराम और परमात्मा श्रीकृष्ण की लीला कितनी अद्‌भुत है? देवेश्वर! मैं तो इस कथा को सौ कल्पों तक सुनती रहूँ तो भी मेरा मन कभी इससे तृप्त नहीं होगा। अब मैं इस समय भगवान् विष्णु के उत्तम माहात्म्य और पूजन-विधि का श्रवण करना चाहती हूँ।

श्रीमहादेवजी ने कहा—देवि! मैं परमात्मा श्रीहरि के स्थापन और पूजन का वर्णन करता हूँ, सुनो। भगवान् का विग्रह दो प्रकार का बताया गया है—एक तो 'स्थापित' और दूसरा 'स्वयं व्यक्त।' पत्थर, मिट्टी, लकड़ी अथवा लोहा आदि से श्रीहरि की आकृति बनाकर श्रुति, स्मृति तथा आगम में बतायी हुई विधि के अनुसार जो भगवान् की स्थापना होती है, वह 'स्थापित विग्रह' है तथा जहाँ भगवान् अपने-आप प्रकट हुए हों, वह 'स्वयं व्यक्त विग्रह' कहलाता है। भगवान् का विग्रह स्वयं व्यक्त हो या स्थापित, उसका पूजन अवश्य करना चाहिए। देवताओं और महर्षियों के पूजन के लिए जगत् के स्वामी सनातन भगवान् विष्णु स्वयं ही प्रत्यक्षरूप से उनके सामने प्रकट हो जाते हैं। जिसका भगवान् के जिस विग्रह में मन लगता है, उसके लिए वे उसी रूप में भूतल पर प्रकट होते हैं, अतः उसी रूप में भगवान् का सदा पूजन करना चाहिए और उसी में सदा अनुरक्त रहना चाहिए। पार्वती! श्रीरंगक्षेत्र में शयन करने वाले भगवान् विष्णु का विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए। काशीपुरी में पापहारी भगवान् माधव मेरे भी पूजनीय हैं। जिस-जिस रमणीय भवन में सनातन भगवान् स्वयं व्यक्त होते हैं, वहाँ-वहाँ जाकर मैं आनंद का अनुभव किया करता हूँ। भगवान् का दर्शन हो जाने पर वे मनोवांछित वरदान देते हैं। इस पृथ्वी पर प्रतिमा में अज्ञानीजनों को भी सदा भगवान् का सान्निध्य प्राप्त रहता है। परम पुण्यमय जम्बूद्वीप और उसमें भी

भारतवर्ष के भीतर प्रतिमा में भगवान विष्णु सदा सन्निहित रहते हैं; अतः मुनियों तथा देवताओं ने भारतवर्ष में ही तप, यज्ञ और क्रिया आदि के द्वारा सदा श्रीविष्णु का सेवन किया है। इंद्रद्युम्नसरोवर, कूर्मस्थान, सिंहाचल, करवीरक, काशी, प्रयाग, सौम्य, शालग्रामार्चन, द्वारका, नैमिषारण्य, बदरिकाश्रम, कृतशौचतीर्थ, पुण्डरीकतीर्थ, दंडकवन, मथुर, वेंकटाचल, श्वेताद्रि, गरुड़ाचल, काञ्ची, अनंतशयन, श्रीरंग, भैरवगिरि, नारायणाचल, वाराहतीर्थ और वामनाश्रम—इन सब स्थानों में भगवान् श्रीहरि स्वयं व्यक्त हुए हैं; अतः उपर्युक्त स्थान संपूर्ण कामनाओं तथा फलों को देने वाले हैं। इनमें श्रीजनार्दन स्वयं ही सन्निहित होते हैं। ऐसे ही स्थानों में जो भगवान् का विग्रह है, उसे मुनिजन 'स्वयं व्यक्त' कहते हैं। महान भगवद्‌भक्तों में श्रेष्ठ पुरुष यदि विधिपूर्वक भगवान की स्थापना करके मंत्र के द्वारा उनका सान्निध्य प्राप्त करावे तो उस स्थापना का विशेष महत्त्व है। गाँवों में अथवा घरों में जो ऐसे विग्रह हो, उनमें भगवान् का पूजन करना चाहिए। सत्पुरुषों ने घर पर शालग्रामशिला की पूजा उत्तम बताई है।

पार्वती! भगवान् की मानसिक पूजा का सबके लिए समान रूप से विधान है, अतः अपने-अपने अधिकार के अनुसार सबको जगदीश्वर की पूजा करनी चाहिए। जो भगवान् के सिवा दूसरे किसी देवता के भक्त नहीं हैं, भगवत्प्राप्ति के सिवा और किसी फल के साधक नहीं हैं, जो वेदवेत्ता, ब्रह्मतत्त्वज्ञ, वीतराग, मुमुक्षु, गुरुभक्त, प्रसन्नात्मा, साधु, ब्राह्मण अथवा इतर मनुष्य हैं, उन सबको सदा श्रीहरि का पूजन करना चाहिए। बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह वेद और स्मृतियों में बताए हुए उत्तम सदाचार का पालन करे। उनमें बताए हुए कर्मों का कभी उल्लंघन न करे। शम (मनोनिग्रह), दम (इंद्रियसंयम), तप (धर्म के लिए क्लेशसहन एवं तितिक्षा), शौच (बाहर-भीतर की पवित्रता), सत्य (मन, वाणी और क्रिया द्वारा सत्य का पालन), मांस न खाना, चोरी न करना और किसी भी जीव की हिंसा न करना—यह सबके लिए धर्म का साधन है।

रात के अंत में उठकर विधिपूर्वक आचमन करे। फिर गुरुजनों को नमस्कार करके मन-ही-मन भगवान् विष्णु का स्मरण करे। मौन हो पवित्रभाव से भक्तिपूर्वक सहस्रनाम का पाठ करे। तत्पश्चात् गाँव से बाहर जाकर विधिपूर्वक मल-मूत्र का त्याग करे। फिर उचित रूप से शरीर की शुद्धि करके कुल्ला करे और शुद्ध एवं पवित्र हो दंतधावन करके विधिपूर्वक स्नान करे। तुलसी के मूलभाग की मिट्टी और तुलसीदल लेकर मूलमंत्र से और गायत्री मंत्र से अभिमंत्रित करके मंत्र से ही उसको संपूर्ण शरीर

में लगावे। फिर अघमर्षण करके स्नान करे। गंगाजी भगवान् के चरणों से प्रकट हुई हैं। अत: उनके निर्मल जल में गोता लगाकर अघमर्षण-सूक्त का जप करे। फिर आचमन करके पुरुषसूक्त के मंत्रों से क्रमश: मार्जन करे। पुन: जल में डुबकी लगाकर अट्ठाईस या एक सौ आठ बार मूल मंत्र का जप करे। इसके बाद वैष्णव-पुरुष उक्त मंत्र से ही जल को अभिमंत्रित करके उससे आचमन करे। तदनन्तर देवताओं, ऋषियों और पितरों का तर्पण करे। फिर वस्त्र निचोड़ ले। उसके बाद आचमन करके धौतवस्त्र पहने। वैष्णव पुरुष निर्मल एवं रमणीय मृत्तिका ले उसे मंत्र से अभिमंत्रित करके ललाट आदि में लगावे। आलस्य छोड़कर परिगणित अंगों में ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे। उसके बाद विधिपूर्वक संध्योपासना करके गायत्री का जप करे। तदनन्तर मन को संयम में रखकर घर जाए और पैर धो मौन भाव से आचमन करके एकाग्रचित्त हो पूजा-मंडप में प्रवेश करे।

एक सुंदर सिंहासन को फूलों से सजाकर भगवान् लक्ष्मीनारायण को विराजमान करे। फिर गंध, पुष्प और अक्षत आदि के द्वारा विधिपूर्वक भगवान् का पूजन आरंभ करे। विग्रह स्थापित, स्वयं-व्यक्त अथवा शालग्रामशिला—कोई भी क्यों न हो, श्रुति, स्मृति और आगमों में बतायी हुई विधि के अनुसार उसका पूजन करना उचित है। वैष्णव पुरुष शुद्धचित्त हो गुरु के उपदेश के अनुसार भक्तिपूर्वक श्रीविष्णु का यथायोग्य पूजन करे। वेदों तथा ब्राह्मणग्रंथों में बतायी हुई पूजा 'श्रौत' कहलाती है। वासिष्ठी पद्धति के अनुसार की जाने वाली पूजा को 'स्मार्त' कहते हैं। तथा पाँचरात्र में बताया हुआ विधान 'आगम' कहलाता है। भगवान् विष्णु की आराधना बहुत ही उत्तम कर्म है। इस क्रिया का कभी लोप नहीं करना चाहिए। आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, स्नानीय, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल एवं नमस्कार आदि उपचारों के द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार प्रसन्नतापूर्वक श्रीविष्णु की आराधना करे। पुरुषसूक्त की प्रत्येक ऋचा तथा मूलमंत्र—इन दोनों ही से वैष्णव पुरुष षोडशोपचार समर्पण करे। पुन: प्रत्युपचार अर्पण करके पुष्पांजलि दे। वैष्णव को चाहिए कि वह मुद्रा द्वारा भगवान् जगन्नाथ का आह्वान करे। फिर फूल और मुद्रा से आसन दे। इसी प्रकार क्रमश: पाद्य, अर्घ्य, आचमन और स्नान के लिए भिन्न-भिन्न पात्रों में निर्मल जल समर्पित करे। उस जल में मांगलिक द्रव्यों के साथ तुलसीदल मिला हो। इसके बाद उक्त दोनों ही प्रकार के मंत्रों से प्रत्युपचार अर्पण करे। सुगंधित तेल से भगवान् को अभ्यंग लगावे। कस्तूरी और चंदन से उनके श्रीअंग में उबटन

लगावे। फिर मंत्र का पाठ करते हुए सुगंधित जल से भगवान् को स्नान करावे। तत्पश्चात् दिव्य वस्त्र और आभूषणों से विधिपूर्वक भगवान् का शृंगार करे। फिर उन्हें गरुड़ के अंक में शयन कराकर मंगलार्घ्य निवेदन करे। उसके बाद पवित्र नामों का कीर्तन करके होम करे। भगवान् को भोग लगाए हुए नैवेद्य से जो शेष बचे, उसी से अग्नि में हवन करे। प्रत्येक आहुति के साथ पुरुषसूक्त अथवा मंगलमय श्रीसूक्त की एक-एक ऋचा का पाठ करे। वेदोक्त विधि से स्थापित अग्नि में घृतमिश्रित हविष्य के द्वारा उपर्युक्त मंत्ररत्न का एक सौ आठ या अट्ठाईस बार जप करके हवन करना चाहिए और हवनकाल में यज्ञस्वरूप महाविष्णु का ध्यान भी करना चाहिए।

शुद्ध जाम्बूनद नामक सुवर्ण के समान जिनका श्याम वर्ण है, जो शंख, चक्र और गदा धारण करने वाले हैं, जिनमें अंग-उपांगों सहित संपूर्ण वेद-वेदांतों का ज्ञान भरा हुआ है तथा जो श्रीदेवी के साथ सुशोभित हो रहे हैं, उन भगवान् का ध्यान करके होम करना चाहिए। मंत्र द्वारा होम करने के पश्चात नामों का उच्चारण करके एक-एक के लिए एक-एक आहुति देनी चाहिए। भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ पुरुष भगवान् के 'नित्य भक्तों' के उद्देश्य से उनके नाम ले-लेकर आहुति दे। पहले क्रमश: भूदेवी, लीलादेवी और विमला आदि शक्तियाँ होम की अधिकारिणी हैं। फिर अनंत, गरुड आदि, तदनन्तर वासुदेव आदि, तत्पश्चात् शक्ति आदि, इनके बाद केशव आदि विग्रह, संकर्षण आदि व्यूह, मत्स्य-कूर्म आदि अवतार, चक्र आदि आयुध, कुमुद आदि देवता, चंद्र आदि देव, इंद्र आदि लोकपाल तथा धर्म आदि देवता क्रमश: होम के अधिकारी हैं; इन सबका हवन और विशेष रूप से पूजन करना चाहिए। इस प्रकार भगवद्भक्त पुरुष नित्य-पूजन की विधि में प्रतिदिन एकाग्रचित हो हवन करे। इस हवन का नाम 'वैकुंठहोम' है।

गृह में पूजा करने पर उस घर के दरवाजे पर पंचयज्ञ की विधि से बलि अर्पण करे, फिर आचमन कर ले। तत्पश्चात् कुश के आसन पर काला मृगचर्म बिछाकर उस शुद्ध आसन के ऊपर बैठे। मृगचर्म अपने-आप मरे हुए मृग का होना चाहिए। पद्मासन से बैठकर पहले भूतशुद्धि करे, फिर जितेन्द्रिय पुरुष मंत्रपाठपूर्वक तीन बार प्राणायाम कर ले। तदनन्तर मन-ही-मन यह भावना करे कि 'मेरे हृदय-कमल का मुख ऊपर की ओर है और वह विज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश से विकसित हो रहा है।' इसके बाद श्रेष्ठ वैष्णव पुरुष उस कमल की वेदत्रयीमयी कर्णिका में क्रमश: अग्निबिम्ब, सूर्यबिम्ब और चन्द्रबिम्ब का चिंतन करे। उन बिम्बों के ऊपर नाना प्रकार के रत्नों

द्वारा निर्मित पीठ की भावना करे। इसके ऊपर बालरवि के सदृश कान्तिमान् अष्टविध ऐश्वर्यरूप अष्टदल-कमल का चिंतन करे। प्रत्येक दल अष्टाक्षर मंत्र के एक-एक अक्षर के रूप में हो। फिर ऐसी भावना करे कि उस अष्टदल-कमल में श्रीदेवी के साथ भगवान् विष्णु विराजमान है, जो कोटि चन्द्रमाओं के समान प्रकाशमान हो रहे हैं। उनके चार भुजाएँ, सुंदर श्रीअंग तथा हाथों में शंख, चक्र और गदा है। पद्म-पत्र के समान विशाल नेत्र शोभा पा रहे हैं। वे समस्त शुभ लक्षणों से संपन्न दिखाई देते हैं। उनके हृदय में श्रीवत्स का चिह्न है, वहीं कौस्तुभमणि का प्रकाश छा रहा है। भगवान् पीत वस्त्र, विचित्र आभूषण, दिव्य शृंगार, दिव्य चंदन, दिव्य पुष्प, कोमल तुलसीदल और वनमाला से विभूषित है। कोटि-कोटि बालसूर्य के सदृश उनकी सुंदर कांति है। उनके श्रीविग्रह से सटकर बैठी हुई श्रीदेवी भी सब प्रकार के शुभ लक्षणों से संपन्न दिखाई देती है।

इस प्रकार ध्यान करते हुए एकाग्रचित्त एवं शुद्ध हो अष्टाक्षर मंत्र का एक हजार या एक सौ बार यथाशक्ति जप करे। फिर भक्तिपूर्वक मानसिक पूजा करके विराम करे। उस समय जो भगवद्भक्त पुरुष वहाँ पधारे हों, उन्हें अन्न-जल आदि से संतुष्ट करे और जब वे जाने लगें तो उनके पीछे-पीछे थोड़ी दूर जाकर विदा करे। देवताओं तथा पितरों का विधिपूर्वक पूजन एवं तर्पण करे और अतिथि एवं भृत्यवर्गों का यथावत् सत्कार करके सबके अंत में वह और उसकी पत्नी भोजन करे। यक्ष, राक्षस और भूतों का पूजन सदा त्याग दे। जो श्रेष्ठ विप्र उनका पूजन करता है, वह निश्चय ही चांडाल हो जाता है। ब्रह्मराक्षस, वेताल, यक्ष तथा भूतों का पूजन मनुष्यों के लिए महाघोर कुंभीपाक नामक नरक की प्राप्ति करने वाला है। यक्ष और भूत आदि के पूजन से कोटि जन्मों के किए हुए यज्ञ, दान और शुभ कर्म आदि पुण्य तत्काल नष्ट हो जाते हैं। जो यक्षों, पिशाचों तथा तमोगुणी देवताओं को निवेदित किया हुआ अन्न खाता है, वह पीत और रक्त भोजन करने वाला होता है। जो स्त्री, यक्ष, पिशाच, सर्प और राक्षसों की पूजा करती है, वह नीचे मुँह किये घोर कालसूत्र नामक नरक में गिरती है। अत: यक्ष आदि तामस देवताओं की पूजा त्याग देनी चाहिए।

वैष्णव पुरुष विश्ववंद्य भगवान् नारायण का पूजन करके उनके चारों ओर विराजमान देवताओं का पूजन करे। भगवान् को भोग लगाए हुए अन्न में से निकाल कर उसी से उनके लिए बलि निवेदन करे। भगवत्प्रसाद से ही उनके निमित्त होम भी करे। देवताओं के लिए भी भगवत्-प्रसाद स्वरूप हविष्य का ही हवन करे। पितरों को ही

प्रसाद अर्पण करे; इससे वह सब फल प्राप्त करता है। प्राणियों को पीड़ा देना विद्वानों की दृष्टि में नरक का कारण है। पार्वती! मनुष्य दूसरों की वस्तु को जो बिना दिये ही ले लेता है, वह भी नरक का कारण है। अगम्या (परायी) स्त्री के साथ संभोग, दूसरों के धन का अपहरण तथा अभक्ष्य वस्तु का भक्षण करने से तत्काल नरक की प्राप्ति होती है। जो अपनी विवाहिता पत्नी को छोड़कर दूसरी स्त्री के साथ संभोग करता है, उसका वह कर्म 'अगम्यागमन' कहलाता है, जो तत्काल नरक की प्राप्ति का कारण है। पतित, पाखंडी और पापी मनुष्यों के संसर्ग से मनुष्य अवश्य नरक में पड़ता है। उनसे संपर्क रखने वाले का भी संसर्ग छोड़ देना चाहिए। एकांती पुरुष महापातक युक्त ग्राम को छोड़ दे और परमैकान्ती मनुष्य वैसे देश का भी परित्याग कर दे। अपने वर्ण तथा आश्रम के अनुसार कर्म, ज्ञान और भक्ति आदि का साधन वैष्णव साधन माना गया है। जो भगवान् की आज्ञा के अनुसार कर्म, ज्ञान आदि का अनुष्ठान करता है, वह वासुदेवपरायण ब्राह्मण 'एकांती' कहलाता है। वैष्णव पुरुष निषिद्ध कर्म को मन-बुद्धि से भी त्याग दे। एकान्ती पुरुष अपने धर्म की निंदा करने वाले शास्त्र को मन से भी त्याग दे और परम एकान्ती भक्त हेय-बुद्धि से उसका परित्याग करे।

कर्म तीन प्रकार का माना गया है—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। इसी प्रकार मुनियों ने ज्ञान के भेदों का वर्णन किया है—कृत्याकृत्यविवेक-ज्ञान, परलोकचिंतन-ज्ञान, विष्णुप्राप्ति साधन-ज्ञान तथा विष्णुस्वरूप-ज्ञान—ये चार प्रकार के ज्ञान हैं। पार्वती! नैमित्तिक कृत्य में भगवान् का विशेष रूप से विधिवत् पूजन करना चाहिए। कार्तिक मास में प्रतिदिन चमेली के फूलों से श्रीहरि की पूजा करे, उन्हें अखंड दीप दे तथा मन और इंद्रियों को संयम में रखकर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रत का पालन करे। फिर कार्तिक के अंत में ब्राह्मणों को भोजन करावे, इससे वह श्रीहरि के सायुज्य को प्राप्त होता है। पौष मास में सूर्योदय के पहले उठकर लगातार एक मास तक उत्पल तथा श्याम-श्वेत कनेर पुष्पों से भगवान् विष्णु का पूजन करे। तत्पश्चात् यथाशक्ति धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन करे। मास की समाप्ति होने पर श्रेष्ठ भगवद्भक्तों को भोजन करावे। ऐसा करने से मनुष्य निश्चय ही एक हजार अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करता है। माघ मास में सूर्योदय के समय विशेषत: नदी के जल में स्नान करके उत्पल (कमल) के पुष्पों से माधव की पूजा करनी चाहिए और उन्हें भक्तिपूर्वक घृत मिश्रित दिव्य खीर का भोग लगाना चाहिए। चैत्र मास में वकुल (मौलसिरी) और चम्पा के फूलों से भगवान् की पूजा करके गुड़ मिश्रित अन्न का भोग लगावे। तदनन्तर मास की

समाप्ति होने पर एकाग्रचित्त हो वैष्णव ब्राह्मणों को भोजन करावे। ऐसा करने से प्रतिदिन एक हजार वर्षों की पूजा का पुण्य प्राप्त होता है। वैशाख मास में शतपत्र और महोत्पल के पुष्पों से विधिवत् भगवान् का पूजन करके उन्हें दही, अन्न और फल के साथ गुड़ और जल भक्तिपूर्वक निवेदन करे। इससे लक्ष्मी सहित जगदीश्वर श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं। ज्येष्ठ मास में श्वेत कमल, गुलाब, कुमुद और उत्पल के पुष्पों से भगवान् हृषीकेश का पूजन करके उन्हें आम में फूलों के साथ अन्न भोग लगावे। भक्तिपूर्वक ऐसा करने से मनुष्य को कोटि गोदान का फल प्राप्त होता है। फिर मास के अंत में वैष्णवों को भोजन कराने से सब का फल अनंत हो जाता है। आषाढ़ मास में देवदेवेश्वर लक्ष्मीपति की प्रतिदिन श्रीपुष्पों से पूजा करे और उन्हें खीर का भोग लगावे। फिर मास की समाप्ति होने पर उत्तम भगवद्भक्त ब्राह्मणों को भोजन करावे। ऐसा करने से वैष्णव पुरुष साठ हजार वर्षों की पूजा का फल पाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। श्रावण मास में नागकेसर और केवड़े से भक्तिपूर्वक श्रीविष्णु की पूजा करने से मनुष्य का फिर इस लोक में जन्म नहीं होता। उस समय भक्ति के साथ घी और शक्कर मिले हुए पूए का नैवेद्य निवेदन करे और श्रेष्ठ भगवद्भक्त ब्राह्मणों को भोजन करावे। भादों में कुंद और कटसरैया के फूलों से पूजा करके खीर का भोग लगावे। अश्विनी में नीलकमल से मधुसूदन की पूजा करे और भक्ति के साथ उन्हें खीर-पूआ निवेदन करे। इसी प्रकार कार्तिक में कोमल तुलसीदल के द्वारा भक्तिपूर्वक अच्युत का पूजन करने से उनका सायुज्य प्राप्त होता है। दूध, घी और शक्कर की बनी हुई मिठाई, खीर और मालपूआ—इन्हें भक्तिपूर्वक एक-एक करके भगवान् को निवेदन करे।

अमावास्या तिथि, शनिवार, वैष्णवनक्षत्र (श्रवण), सूर्य संक्रान्ति, व्यतीपात, चंद्रग्रहण और सूर्यग्रहण के अवसर पर अपनी शक्ति के अनुसार भगवान् विष्णु का विशेष रूप से पूजन करे। श्रेष्ठ द्विज को उचित है कि गुरु के उत्क्रमण के दिन तथा श्रीहरि के अवतारों के जन्म-नक्षत्रों में अपनी शक्ति के अनुसार वैष्णव-याग करे। उसमें वेदमंत्रों का उच्चारण करके प्रत्येक ऋचा के साथ भगवान् को पुष्पांजलि समर्पण करे। यथाशक्ति वैष्णव ब्राह्मणों को भोजन करावे और दक्षिणा दे। ऐसा करने से वह अपनी करोड़ों पीढ़ियों का उद्धार करके वैष्णव-पद (वैकुंठधाम) को प्राप्त होता है। श्रेष्ठ वैष्णव यदि संपूर्ण वेदों के द्वारा भगवान् का यजन करने में असमर्थ हो तो केवल वैष्णव अनुवाकों द्वारा लगातार सात रात तक प्रतिदिन एक सहस्र पुष्पांजलि समर्पण

करे और हविष्य से हवन करके भगवान् का यजन करे। विद्वान पुरुष विशेषत: श्रेष्ठ भगवद्भक्तों का पूजन करे। यज्ञान्त में अपने वैभव के अनुसार अवभृथ-स्नान का उत्सव करें। अवभृथ-स्नान भी उसे वैष्णव अनुवाकों द्वारा ही करना चाहिए। विधिपूर्वक स्नान करके एक सुंदर पात्र में आचार्य के चरणों को भक्तिपूर्वक पखारे। फिर गंध, पुष्प, वस्त्र और आभूषण आदि के द्वारा पूजा करे। यथाशक्ति ताम्बूल और फूलों से सत्कार करे और अन्न-पान आदि से भोजन कराकर बारम्बार प्रणाम करे। जाते समय गाँव की सीमा तक पहुँचाने जाए और वहाँ प्रणाम करके उन्हें विदा करे।

इस प्रकार जीवन-भर आलस्य छोड़कर भगवान् और उनके भक्तों का विशेष रूप से पूजन करना चाहिए। समस्त आराधनाओं में श्रीविष्णु की आराधना सबसे श्रेष्ठ है। उससे भी उनके भक्तों की पूजा करनी अधिक श्रेष्ठ है। जो भगवान् गोविंद की पूजा करके उनके भक्तों का पूजन नहीं करता, उसे भगवद्भक्त नहीं जानना चाहिए। वह केवल दंभी है। अत: सर्वथा प्रयत्न करके श्रीविष्णु भक्तों का पूजन करना चाहिए। उनके पूजन से मनुष्य समस्त दु:खराशि के पार हो जाता है। पार्वती! इस प्रकार मैंने तुमसे श्रीविष्णु की श्रेष्ठ आराधना, नित्य-नैमित्तिक कृत्य तथा भगवद्भक्तों की पूजा का वर्णन किया है।

उपरोक्त सभी धार्मिक आचार वैष्णव भक्त धनावंशी स्वामियों के लिए अनिवार्य हैं, इन्हें अपना कर वे वैष्णव धाम को सुगमता से प्राप्त कर सकते हैं।

वैष्णवों के लिए नाम कीर्तन की महिमा तथा श्रीविष्णु सहस्रनाम स्तोत्र का वर्णन

ऋषियों ने कहा—सूतजी! आपका हृदय अत्यंत करुणा युक्त है; अतएव श्रीमहादेवजी और देवर्षि नारद का जो अद्‌भुत संवाद हुआ था, उसे आपने हम लोगों से कहा है। हम लोग श्रद्धापूर्वक सुन रहे हैं। अब आप कृपापूर्वक यह बताइए कि महात्मा नारद ने ब्रह्माजी से भगवन्नामों की महिमा का किस प्रकार श्रवण किया था।

सूतजी बोले—द्विजश्रेष्ठ मुनियो! इस विषय में मैं पुराना इतिहास सुनाता हूँ। आप सब लोग ध्यान देकर सुनें। इसके श्रवण से भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति बढ़ती है। एक समय की बात है, चित्त को पूर्ण एकाग्र रखने वाले नारदजी अपने पिता ब्रह्माजी का दर्शन करने के लिए मेरु पर्वत के शिखर पर गए। वहाँ आसन पर बैठे हुए जगत्पति ब्रह्माजी को प्रणाम करके मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने इस प्रकार कहा—'विश्वेश्वर! भगवान् के नाम की जितनी शक्ति है, उसे बताइए। प्रभो! ये जो संपूर्ण विश्व के स्वामी साक्षात् श्रीनारायण हरि हैं, इन अविनाशी परमात्मा के नाम की कैसी महिमा है?'

ब्रह्माजी बोले—बेटा! इस कलियुग में विशेषत: नाम-कीर्तनपूर्वक भगवान् की भक्ति जिस प्रकार करनी चाहिए, वह सुनो। जिनके लिए शास्त्रों में कोई प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है, उन सभी पापों की शुद्धि के लिए एक मात्र विजयशील भगवान् श्रीविष्णु का प्रयत्नपूर्वक स्मरण ही सर्वोत्तम साधन देखा गया है, वह समस्त पापों का नाश करने वाला है। अत: श्रीहरि के नाम का कीर्तन और जप करना चाहिए। जो ऐसा करता है, वह सब पापों से मुक्त हो, श्रीविष्णु के परमपद को प्राप्त होता है। जो मनुष्य 'हरि' इस दो अक्षरों वाले नाम का सदा उच्चारण करते हैं, वे उसके उच्चारण मात्र से मुक्त हो जाते हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तपस्या के रूप में किए जाने वाले जो संपूर्ण प्रायश्चित्त हैं, उन सबकी अपेक्षा श्रीकृष्ण का निरंतर स्मरण श्रेष्ठ है। जो मनुष्य प्रात:, सायं, रात्रि तथा मध्याह्न आदि के समय 'नारायण' नाम का स्मरण करता है, उसके समस्त पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं।

उत्तम व्रत का पालन करने वाले नारद! मेरा कथन सत्य है, सत्य है, सत्य है। भगवान् के नामों का उच्चारण करने मात्र से मनुष्य बड़े-बड़े पापों से मुक्त हो जाता है। 'राम-राम-राम-राम' इस प्रकार बारम्बार जाप करने वाला मनुष्य यदि चांडाल हो तो भी वह पवित्रात्मा हो जाता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। उसने नाम-कीर्तन मात्र से कुरुक्षेत्र, काशी, गया और द्वारका आदि संपूर्ण तीर्थों का सेवन कर लिया। जो 'कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!' इस प्रकार जप और कीर्तन करता है, वह इस संसार का परित्याग करने पर भगवान् विष्णु के समीप आनंद भोगता है। ब्रह्मन! जो कलियुग में प्रसन्नतापूर्वक 'नृसिंह' नाम का जप और कीर्तन करता है, वह भगवद्‌भक्त मनुष्य महान पाप से छुटकारा पा जाता है। सत्ययुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ तथा द्वापर में पूजन करके मनुष्य जो कुछ पाता है, वही कलियुग में केवल भगवान् केशव का कीर्तन करने से पा लेता है। जो लोग इस बात को जानकर जगदात्मा केशव के भजन में लीन होते हैं, वे सब पापों से मुक्त हो, श्रीविष्णु के परमपद को प्राप्त कर लेते हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि—ये दस अवतार इस पृथ्वी पर बताए गए हैं। इनके नामोच्चारण-मात्र से सदा ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध होता है। जो मनुष्य प्रात:काल जिस किसी तरह भी श्रीविष्णु नाम का कीर्तन, जप तथा ध्यान करता है, वह निस्संदेह मुक्त होता है, निश्चय ही नर से नारायण बन जाता है।

सूतजी कहते हैं—यह सुनकर नारदजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अपने पिता ब्रह्माजी से बोले—तात! तीर्थसेवन के लिए पृथ्वी पर भ्रमण करने की क्या आवश्यकता है; जिनके नाम का ऐसा माहात्म्य है कि उसे सुनने मात्र से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, उन भगवान् का ही स्मरण करना चाहिए। जिस मुख में 'राम-राम' का जप होता रहता है, वही महान तीर्थ है, वही प्रधान क्षेत्र है तथा वही समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। सुव्रत! भगवान् के कीर्तन करने योग्य कौन-कौनसे नाम हैं? उन सबको विशेष रूप से बताइए।

ब्रह्माजी ने कहा—बेटा! ये भगवान् विष्णु सर्वत्रव्यापक सनातन परमात्मा है। इनका न आदि है न अन्त। ये लक्ष्मी से युक्त, सम्पूर्ण भूतों के आत्मा तथा समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाले हैं। जिनसे मेरा प्रादुर्भाव हुआ है, वे भगवान् विष्णु सदा मेरी रक्षा करें। वही काल के भी काल और वही मेरे पूर्वज हैं। उनका कभी विनाश नहीं होता। उनके नेत्र कमल के समान शोभा पाते हैं। वे परम बुद्धिमान, अविकारी एवं पुरुष (अंतर्यामी) हैं। सदा शेषनाग की शय्या पर शयन करने वाले भगवान् विष्णु

सहस्रों मस्तक वाले हैं। वे महाप्रभु हैं। संपूर्ण भूत उन्हीं के स्वरूप हैं। भगवान् जनार्दन साक्षात् विश्वरूप हैं। कैटभ नामक असुर का वध करने के कारण वे कैटभारि कहलाते हैं। वे ही व्यापक होने के कारण विष्णु, धारण-पोषण करे के कारण धाता और जगदीश्वर हैं। नारद! मैं उनका नाम और गोत्र नहीं जानता। तात! मैं केवल वेदों का वक्ता हूँ, वेदातीत परमात्मा का ज्ञाता नहीं, अत: देवर्षे! तुम वहाँ जाओ, जहाँ भगवान् विश्वनाथ रहते हैं। मुनिश्रेष्ठ! वे तुमसे संपूर्ण तत्त्व का वर्णन करेंगे। कैलास के स्वामी श्रीमहादेवजी ही अंतर्यामी पुरुष हैं। वे देवताओं के स्वामी और संपूर्ण भक्तों के आराध्यदेव हैं। पाँच मुखों से सुशोभित भगवान् उमानाथ सब दु:खों का विनाश करने वाले हैं। संपूर्ण विश्व के ईश्वर श्रीविश्वनाथजी सदा भक्तों पर दया करने वाले हैं। नारद! वहीं जाओ, वे तुम्हें सब कुछ बता देंगे।

सूतजी कहते हैं—पिता की बात सुनकर देवर्षि नारद कैलास पर्वत पर, जहाँ कल्याणप्रद भगवान् विश्वेश्वर नित्य निवास करते हैं, गये। देवताओं द्वारा पूजित देवाधिदेव जगद्गुरु भगवान् शंकर कैलास के शिखर पर विराजमान थे। उनके पाँच मुख, दस भुजाएँ, प्रत्येक मुख में तीन नेत्र तथा हाथों में त्रिशूल, कपाल, खट्वांग, तीक्ष्ण शूल, खड्ग और पिनाक नाम का धनुष शोभा पा रहे थे। बैल पर सवारी करने वाले वरदाता भगवान् भीम अपने अंगों में भस्म रमाये सर्पों की शोभा से युक्त चंद्रमा का मुकुट पहने करोड़ों सूर्यों के समान देदीप्यमान हो रहे थे। नारदजी ने देवेश्वर शिव को साष्टांग दंडवत् किया। उन्हें देखकर महादेवजी के नेत्रकमल खिल उठे। उस समय वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ शिव ने ब्रह्मचारियों में श्रेष्ठ नारदजी से पूछा—'देवर्षिप्रवर! बताओ, कहाँ से आ रहे हो?'

नारदजी ने कहा—भगवन्! एक समय मैं ब्रह्माजी के पास गया था। वहाँ उनके मुख से मैंने भगवान् विष्णु के पापनाशक माहात्म्य का श्रवण किया। सुरश्रेष्ठ! ब्रह्माजी ने मेरे सामने भगवान् की महिमा का भलीभाँति वर्णन किया। भगवान् के नाम की जितनी शक्ति है, वह भी मैंने उनके मुख से सुनी है। तत्पश्चात् पहले विष्णु के नामों के विषय में प्रश्न किया। तब उन्होंने कहा—'नारद! मैं इस बात को नहीं जानता; इसका ज्ञान महारुद्र को है। वे ही सब कुछ बताएँगे।' यह सुनकर मैं आपके पास आया हूँ। इस घोर कलियुग में मनुष्यों की आयु थोड़ी होगी। वे सदा अधर्म में तत्पर रहेंगे। भगवान् के नामों में उनकी निष्ठा नहीं होगी। कलियुग के ब्राह्मण पाखंडी, धर्म से विरक्त, संध्या न करने वाले, व्रतहीन, दुष्ट और मलीन होंगे; जैसे ब्राह्मण होंगे, वैसे ही

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य जाति के लोग भी होंगे। प्राय: मनुष्य भगवान् के भक्त नहीं होंगे। द्विजों से बाहर गिने जाने वाले शूद्र कलियुग में धर्म-अधर्म तथा हिताहित का ज्ञान भी नहीं रखते; ऐसा जानकर मैं आपके निकट आया हूँ। आप कृपा करके विष्णु के सहस्र नामों का वर्णन कीजिए, जो पुरुषों के लिए सौभाग्यजनक, परम उत्तम तथा सर्वदा भक्तिभाव को बढ़ाने वाले हैं; इसी प्रकार जो ब्राह्मणों को ब्रह्मज्ञान, क्षत्रियों को विजय, वैश्यों को धन तथा शूद्रों को सदा सुख देने वाले हैं। सुव्रत! जो सहस्रनाम परम गोपनीय है, उसका वर्णन कीजिए। वह परम पवित्र एवं सदा सर्वतीर्थमय है; अत: मैं उसका श्रवण करना चाहता हूँ। प्रभो! विश्वेश्वर! कृपया उस सहस्रनाम का उपदेश कीजिए।

नारदजी के वचन सुनकर भगवान् शंकर के नेत्र आश्चर्य से चकित हो उठे। भगवान् विष्णु के नाम का बारम्बार स्मरण करके उनके शरीर में रोमांच हो आया। वे बोले—'ब्रह्मन! भगवान् विष्णु के सहस्रनाम परम गोपनीय हैं। इन्हें सुनकर मनुष्य कभी दुर्गति में नहीं पड़ता।' यों कहकर भगवान् शंकर ने नारदजी को विष्णुसहस्रनाम का उपदेश दिया, जिसे पूर्वकाल में वे भगवती पार्वती जी को सुना चुके थे। इस प्रकार नारदजी ने कैलास पर्वत पर भगवान् महेश्वर से श्रीविष्णुसहस्रनाम का ज्ञान प्राप्त किया। फिर दैवयोग से एक बार वे कैलास से उतर कर नैमिषारण्य नामक तीर्थ में आए। वहाँ के ऋषियों ने ऋषिश्रेष्ठ महात्मा नारद को आया देख विशेष रूप से उनका स्वागत-सत्कार किया। उन्होंने विष्णुभक्त विप्रवर नारदजी के ऊपर फूल बरसाये, पाद्य और अर्घ्य निवेदन किया, उनकी आरती उतारी और फल-मूल निवेदन करके पृथ्वी पर साष्टांग प्रणाम किया। तत्पश्चात् वे बोले—'महामुने! हम लोग इस वंश में जन्म लेकर आज कृतार्थ हो गए; क्योंकि आज हमें परम पवित्र और पापों का नाश करने वाला आपका दर्शन प्राप्त हुआ। देवर्षे! आपके प्रसाद से हमने पुराणों का श्रवण किया है। ब्रह्मन! अब आप यह बताइए कि किस प्रकार से समस्त पापों का क्षय हो सकता है। दान, तपस्या, तीर्थ, यज्ञ, योग, ध्यान, इंद्रिय-निग्रह और शास्त्र समुदाय के बिना ही कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है?'

नारदजी बोले—मुनिवरो! एक समय भगवती पार्वती ने कैलास शिखर पर बैठे हुए अपने प्रियतम देवाधिदेव जगद्गुरु महादेवजी से इस प्रकार प्रश्न किया।

पार्वती बोलीं—भगवन्! आप सर्वज्ञ और सर्वपूजित श्रेष्ठ देवता हैं। जन्म और मृत्यु से रहित स्वयंभू एवं सर्वशक्तिमान हैं। स्वामिन! आप सदा किसका ध्यान करते

हैं? किस मंत्र का जप करते हैं? देवेश्वर इसे जानने की मेरे मन में बड़ी उत्कंठा है। सुव्रत! यदि मैं आपकी प्रियतमा और कृपापात्र हूँ तो मुझसे यथार्थ बात कहिए।

महादेवजी बोले—देवि! पहले सत्ययुग में विशुद्ध चित्त वाले सब पुरुष संपूर्ण ईश्वरों के भी ईश्वर एकमात्र भगवान् विष्णु का तत्त्व जानकर उन्हीं के नामों का जप किया करते थे और उसी के प्रभाव से इस लोक तथा परलोक में भी परम ऐश्वर्य को प्राप्त करते थे। प्रिये! तुलादान, अश्वमेध आदि यज्ञ, काशी, प्रयाग आदि तीर्थों में किए हुए स्नान आदि शुभकर्म, गया में किए हुए पितरों के श्राद्ध-तर्पण आदि, वेदों के स्वाध्याय आदि, जप, उग्र, तप, नियम, यम, जीवों पर दया, गुरुशुश्रूषा, सत्यभाषण, वर्ण और आश्रम के धर्मों का पालन, ज्ञान तथा ध्यान आदि साधनों का कोटि जन्मों तक भलीभाँति अनुष्ठान करने पर भी मनुष्य परम कल्याणमय सर्वेश्वरेश्वर भगवान् विष्णु को नहीं पाते। परन्तु जो दूसरे का भरोसा न करके सर्वभाव से पुराण पुरुषोत्तम श्रीनारायणजी की शरण ग्रहण करते हैं, वे उन्हें प्राप्त कर लेते हैं। जो लोग एकमात्र श्रीभगवान् विष्णु के नामों का कीर्तन करते हैं, वे सुख और आनंद को प्राप्त करते हैं। अतः सदैव भगवान् विष्णु का स्मरण करना चाहिए।

परम परमेश्वर भगवान आशुतोष शिवजी ने 'श्रीविष्णु सहस्रनाम' के पाठ की जो महिमा गाई है, वह क्या व्यर्थ है? किसी भी धनावंशी को इहलौकिक और पारलौकिक समृद्धि प्राप्त करनी है तो वह प्रतिदिन स्नान आदि नित्यकर्म कर पवित्र भाव से अपने घर में स्थित भगवान के श्रीविग्रह के समक्ष बैठ कर 'श्रीविष्णु सहस्रनाम' का पाठ करे और शीघ्र ही उसका चामत्कारिक लाभ प्राप्त करे।

वैष्णवों के लक्षण और महिमा तथा श्रवण द्वादशी

महादेवजी कहते हैं—नारद! सुनो, अब मैं वैष्णवों के लक्षण बताऊँगा, जिन्हें सुनकर लोग ब्रह्महत्या आदि पातकों से मुक्त हो जाते हैं। भक्त भगवान् विष्णु का होकर रहा है, इसलिए वह वैष्णव कहलाता है। समस्त वर्णों की अपेक्षा वैष्णव को श्रेष्ठ कहा गया है। जिनका आहार अत्यंत पवित्र है, उन्हीं के वंश में वैष्णव पुरुष जन्म धारण करता है। ब्रह्मन! जिनके भीतर क्षमा, दया, तपस्या और सत्य की स्थिति है, उन वैष्णवों के दर्शन मात्र के आग से रूई की भाँति सारा पाप नष्ट हो जाता है। जो हिंसा से दूर रहता है, जिसकी मति सदा भगवान् विष्णु में लगी रहती है, जो अपने कंठ में तुलसी काष्ठ की माला धारण करता है, प्रतिदिन अपने अंगों में बारह तिलक लगाए रहता है तथा विद्वान् होकर धर्म और अधर्म का ज्ञान रखता है, वह मनुष्य वैष्णव कहलाता है। जो सदा वेद-शास्त्र के अभ्यास में लगे रहते, प्रतिदिन यज्ञों का अनुष्ठान करते तथा बारम्बार वर्ष के चौबीस उत्सव मनाते रहते हैं, उनका कुल परम धन्य है; उन्हीं का यश विस्तार को प्राप्त होता है तथा वे ही लोग संसार में धन्यतम एवं भगवद्भक्त हैं। ब्रह्मन! जिसके कुल में एक ही भगवद्भक्त पुरुष उत्पन्न हो जाता है, उसका कुल बारम्बार उस पुरुष के द्वारा उद्धार को प्राप्त होता रहता है। वैष्णवों के दर्शन मात्र से ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो जाता है। महामुने! इस लोक में जो वैष्णव पुरुष देखे जाते हैं, तत्त्ववेता पुरुषों को उन्हें विष्णु के समान ही जानना चाहिए। जिसने भगवान् विष्णु की पूजा की, उसके द्वारा सबका पूजन हो गया। जिसने वैष्णवों की पूजा की, उसने महादान कर लिया। जो वैष्णवों को सदा फल, साग, अन्न अथवा वस्त्र दिया करते हैं, वे इस भूमंडल में धन्य हैं। ब्रह्मन! वैष्णवों के विषय में अब और क्या कहा जाए। बारम्बार अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है; उनका दर्शन और स्पर्श—सब कुछ सुखद है। जैसे भगवान् विष्णु हैं, वैसा ही उनका भक्त वैष्णव पुरुष भी है। इन दोनों में कभी अंतर नहीं रहता। ऐसा जानकर विद्वान पुरुष सदा वैष्णवों की पूजा करे। जो इस पृथ्वी पर एक ही वैष्णव ब्राह्मण को भोजन करा देता है, उसने सहस्रों ब्राह्मणों को भोजन करा देता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

नारदजी ने कहा—सुरश्रेष्ठ! जो सदा जो सदा उपवास करने में असमर्थ हैं, उनके लिए कोई एक ही द्वादशी का व्रत, जो पुण्यजनक हो, बतलाइये।

महादेवजी बोले—भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में जो श्रवण नक्षत्र से युक्त द्वादशी होती है, वह सब कुछ देने वाली पुण्यमयी तथा उपवास करने पर महान फल देने वाली है। जो नदियों के संगम में नहाकर उक्त द्वादशी को उपवास करता है, वह अनायास ही बारह द्वादशियों का फल पा लेता है। बुधवार और श्रवण नक्षत्र से युक्त जो द्वादशी होती है, उसका महत्त्व बहुत बड़ा है। उस दिन किया हुआ सब कुछ अक्षय हो जाता है। श्रवण-द्वादशी के दिन विद्वान् पुरुष जलपूर्ण कलश की स्थापना करके उसके ऊपर एक पात्र रखे और उसमें श्री जनार्दन की स्थापना करे। तत्पश्चात् उनके आगे घी में पका हुआ नैवेद्य निवेदन करे; साथ ही अपनी शक्ति के अनुसार जल से भरे हुए अनेक नए घड़ों का दान करे। इस प्रकार श्रीगोविंद की पूजा करके उनके समीप रात्रि में जागरण करे। फिर निर्मल प्रभातकाल आने पर स्नान करके फूल, धूप, नैवेद्य, फल और सुंदर वस्त्र आदि के द्वारा भगवान् गरुडध्वज की पूजा करे। तदनन्तर पुष्पांजलि दे और इस मंत्र को पढ़े—

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंयुत।
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव।।

(70/10)

'बुधवार और श्रवण नक्षत्र से युक्त भगवान् गोविन्द! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मेरी पापराशि नाश करके आप मुझे सब प्रकार के सुख प्रदान करें।'

तत्पश्चात् वेद-वेदांगों के पारगामी, विशेषत: पुराणों के ज्ञाता विद्वान ब्राह्मण को विधिपूर्वक पवित्र अन्न का दान करे। इस प्रकार श्रेष्ठ पुरुष किसी नदी के किनारे एकचित्त होकर उक्त विधि से सब कार्य पूर्ण करे। इस विषय में जानकार लोग यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं—एक महान् वन में जो घटना घटित हुई थी, उसका वर्णन करता हूँ; सुनो।

विद्वन्! दाशेरक नाम का जो देश है, उसके पश्चिम भाग में मरु (मारवाड़) प्रदेश है, जो समस्त प्राणियों के लिए भय उत्पन्न करने वाला है। वहाँ की भूमि तपी हुई बालू से भरी रहती है। वहाँ बड़े-बड़े साँप हैं, जो महादुष्ट होते हैं। वह भूमि थोड़ी छायावाले वृक्षों से व्याप्त है। शमी, खैर, पलाश, करील और पीलू—ये ही वहाँ के वृक्ष हैं। मजबूत काँटों से घिरे हुए वहाँ के वृक्ष बड़े भयंकर दिखाई देते हैं; तथापि कर्मबंधन

से बंधे होने के कारण वहाँ भी सब जीव जीवन धारण करते हैं। विद्वन्! उस देश में न तो पर्याप्त जल है और न जल धारण करने वाले बादल ही वहाँ दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे देश में कोई बनिया भाग्यवश अपने साथियों से बिछुड़कर इधर-उधर भटक रहा था। उसके हृदय में भ्रम छा गया था। वह भूख, प्यास और परिश्रम से पीड़ित हो रहा था। कहाँ गाँव है? कहाँ जल है? मैं कहाँ जाऊँगा? यह कुछ भी उसे जान नहीं पड़ता था। इसी समय उसने कुछ प्रेत देखे, जो भूख-प्यास से व्याकुल एवं भयंकर दिखाई देते थे। उनमें एक प्रेत ऐसा था, जो दूसरे प्रेत के कंधे पर चढ़कर चलता था तथा और बहुत-से प्रेत उसे चारों ओर से घेरे हुए थे। प्रेतों की भयानक आवाज के साथ वह भयंकर प्रेत उधर ही आ रहा था। वह उस भयानक जंगल में मनुष्य को आया देख प्रेत के कंधे से पृथ्वी पर उतर पड़ा और बनिये के पास आकर उसे प्रणाम करके इस प्रकार बोला—'इस घोर प्रदेश में आपका कैसे प्रवेश हुआ?' यह सुनकर उस बुद्धिमान बनिये ने कहा—'दैवयोग से तथा पूर्वजन्म के किए हुए कर्म की प्रेरणा से मैं अपने साथियों से बिछुड़ गया हूँ। इस प्रकार मेरा यहाँ प्रवेश संभव हुआ है। इस समय मुझे बड़े जोर की भूख और प्यास सता रही है।'

तब उस प्रेत ने उस समय अपने अतिथि को उत्तम अन्न प्रदान किया। उसके खाने मात्र से बनिये को बड़ी तृप्ति हुई। वह एक ही क्षण में प्यास और संताप से रहित हो गया। इसके बाद वहाँ बहुत-से प्रेत आ पहुँचे। प्रधान प्रेत ने क्रमश: उन सबको अन्न का भाग दिया। दही, भात और जल से उन्हें बड़ी प्रसन्नता और तृप्ति हुई। इस प्रकार अतिथि और प्रेत समुदाय को तृप्त करके उसने स्वयं भी बचे हुए अन्न का सुखपूर्वक भोजन किया। उसके भोजन कर लेने पर वहाँ जो सुंदर अन्न और जल प्रस्तुत हुआ था, वह सब अदृश्य हो गया। तब बनिये ने उस प्रेतराज से कहा—'भाई! इस वन में तो मुझे यह बड़े आश्चर्य की बात प्रतीत हो रही है। तुम्हें यह उत्तम अन्न और जल कहाँ से प्राप्त हुआ? तुमने थोड़े-से ही अन्न से इन बहुत-से जीवों को तृप्त कर दिया। इस घोर जंगल में तुम लोग कैसे निवास करते हो?+

प्रेत बोला—महाभाग! मैंने अपना पूर्वजन्म केवल वाणिज्य-व्यवसाय में आसक्त होकर व्यतीत किया है। समूचे नगर में मेरे समान दूसरा कोई दुरात्मा नहीं था। धन के लोभ से मैंने कभी किसी को भीख तक नहीं दी। उन दिनों एक गुणवान् ब्राह्मण मेरे मित्र थे। एक समय भादों के महीने में, जब श्रवण नक्षत्र और द्वादशी का योग आया था, वे मुझे साथ लेकर तापी नदी के तट पर गए, जहाँ उसका चन्द्रभागा नदी के साथ

पवित्र संगम हुआ था, चन्द्रभागा चन्द्रमा की पुत्री है और तापी सूर्य की। उन दोनों के मिले हुए शीत और उष्ण जल में मैंने ब्राह्मण के साथ प्रवेश किया। श्रवण-द्वादशी के योग में बहुत-से मनुष्यों को संतुष्ट किया। चन्द्रभागा के उत्तम जल से भरकर ब्राह्मण को जलपात्र दान किया तथा दही और भात के साथ जल से भरे हुए बहुत-से पुरवे भी ब्राह्मण को दिए। इसके सिवा भगवान् शंकर के समक्ष श्रेष्ठ ब्राह्मण को छाता, जूते, वस्त्र तथा श्रीहरि की प्रतिमा भी दान की। उस नदी के तीर पर मैंने धन की रक्षा के लिए व्रत किया था। उपवासपूर्वक एक मनोहर जलपात्र भी दान किया था। यह सब करके मैं घर लौट आया। तदनन्तर, कुछ काल के बाद मेरी मृत्यु हो गई। नास्तिक होने के कारण मुझे प्रेत की योनि में आना पड़ा। श्रवण-द्वादशी के योग में मैंने जल का बड़ा पात्र दान किया था, इसलिए प्रतिदिन मध्याह्न के समय यह मुझे प्राप्त होता है। ये सब ब्राह्मण का धन चुराने वाले पापी हैं, जो प्रेतभाव को प्राप्त हुए हैं। इनमें कुछ परस्त्री-लंपट और कुछ अपने स्वामी से द्रोह करने वाले रहे हैं। इस मरुप्रदेश में आकर ये मेरे मित्र हो गए हैं। सनातन परमात्मा भगवान् विष्णु अक्षय (अविनाशी) हैं। उनके उद्देश्य से जो कुछ दिया जाता है, वह सब अक्षय कहा गया है। उस अक्षय अन्न से ही ये प्रेत पुनः-पुनः तृप्त होते रहते हैं। आज तुम मेरे अतिथि के रूप में उपस्थित हुए हो। मैं अन्न से तुम्हारी पूजा करके प्रेतभाव से मुक्त हो परमगति को प्राप्त होऊँगा, परंतु मेरे बिना ये प्रेत इस भयंकर वन में कर्मानुसार प्राप्त हुई प्रेतयोनि की दुस्सह पीड़ा भोगेंगे? अतः तुम मुझ पर कृपा करने के लिए इन सबके नाम और गोत्र लिखकर ले लो। महामते! यहाँ से हिमालय पर जाकर तुम खजाना प्राप्त करोगे। तत्पश्चात् गया जाकर इन सबका श्राद्ध कर देना।

महादेवजी कहते हैं—नारद! बनिये को इस प्रकार आदेश देकर प्रेत ने उसे सुखपूर्वक विदा किया। घर आने पर उसने हिमालय की यात्रा की और वहाँ से प्रेत का बताया हुआ खजाना लेकर वह लौट आया। उस खजाने का छठा अंश साथ लेकर वह 'गया' तीर्थ में गया। वहाँ पहुँचकर उस परम बुद्धिमान बनिये ने शास्त्रोक्त विधि से उन प्रेतों का श्राद्ध किया। एक-एक के नाम और गोत्र का उच्चारण करके उनके लिए पिंडदान किया। वह जिस दिन जिसका श्राद्ध करता था, उस दिन वह आकर स्वप्न में बनिये को प्रत्यक्ष दर्शन देता और कहता कि 'महाभाग! तुम्हारी कृपा से मैंने प्रेतभाव को त्याग दिया और अब मैं परमगति को प्राप्त हो रहा हूँ।' इस प्रकार वह महामना वैश्य गया-तीर्थ में प्रेतों का विधिपूर्वक श्राद्ध करके बारम्बार भगवान् विष्णु का ध्यान

करता हुआ अपने घर लौट आया। फिर भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में, जब श्रवण-द्वादशी का योग आया, तब वह सब आवश्यक सामग्री साथ लेकर नदी के संगम पर गया और वहाँ स्नान करके उसने द्वादशी का व्रत किया। स्नान, दान और भगवान् विष्णु का पूजन करने के अनन्तर ब्राह्मण को उपहार भेंट किया। एकचित्त होकर उस बुद्धिमान वैश्य ने शास्त्रोक्त विधि से सब कार्य संपन्न किया। उसके बाद प्रतिवर्ष भादों का महीना आने श्रवण-द्वादशी के योग में नदी के संगम पर जाकर वह भगवान् विष्णु के उद्देश्य से पूर्वोक्त प्रकार से स्नान-दान आदि सब कार्य करने लगा। तदनन्तर दीर्घकाल के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। उसने सब मनुष्यों के लिए दुर्लभ परमधाम को प्राप्त कर लिया। आज भी वह विष्णुदूतों से सेवित हो वैकुंठधाम में विहार कर रहा है। ब्रह्मन्! तुम भी इसी प्रकार श्रवण-द्वादशी का व्रत करो। वह इस लोक और परलोक में भी संपूर्ण सौभाग्य प्रदान करने वाला, उत्तम बुद्धि का देने वाला तथा सब पापों को हरने वाला उत्तम साधन है। जो श्रावण-द्वादशी के योग में इस व्रत का अनुष्ठान करता है, वह इसके प्रभाव से विष्णु-लोक में जाता है।

धनावंशी स्वामियों के लिए एकादशी व्रत का तो अपार माहात्म्य है ही, पर समूचे वर्ष में श्रवण बारस तो केवल एक ही बार भादवे के च्यानण पख में आती है। पितृ तृप्ति के लिए, इस व्रत को अवश्य करना चाहिए।

धनावंशियों के लिए गोपीचंदन का महत्त्व

गोपीचंदन का माहात्म्य जैसा मैंने देखा और सुना है, उसका वर्णन करता हूँ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—कोई भी क्यों न हो, जो विष्णु का भक्त होकर उनके भजन में तत्पर रहकर अपने अंगों में गोचीचंदन लगाता है, वह गंगाजल से नहाए हुए की भाँति सब दोषों से मुक्त हो जाता है। कल्याण की इच्छा रखने वाले वैष्णव ब्राह्मणों के लिए गोपीचंदन का तिलक धारण करना विशेष रूप से कर्तव्य है। ललाट में दंड के आकार का, वक्षःस्थल में कमल के सदृश, बाहुओं के मूलभाग में बाँस के पत्ते के समान तथा अन्यत्र दीपक के तुल्य चंदन लगाना चाहिए। अथवा जैसी रुचि हो, उसी के अनुसार भिन्न-भिन्न अंगों में चंदन लगाए, इसके लिए कोई खास नियम नहीं है। गोपीचंद का तिलक धारण करने मात्र से ब्राह्मण से लेकर चांडाल तक सभी मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं। जो वैष्णव ब्राह्मण भगवान् विष्णु के ध्यान में तत्पर हो, उसमें तथा विष्णु में भेद नहीं मानना चाहिए; वह इस लोक में श्रीविष्णु का ही स्वरूप होता है।

तुलसी के पत्र अथवा काष्ठ की बनी हुई माला धारण करने से वैष्णव निश्चय ही मुक्ति का भागी होता है। मृत्यु के समय भी जिसके ललाट पर गोपीचंदन का तिलक रहता है, वह विमान पर आरूढ हो विष्णु के परम पद को प्राप्त होता है। नारद! कलियुग में जो नरश्रेष्ठ गोपीचंद का तिलक धारण करते हैं, उनकी कभी दुर्गति नहीं होती। ब्रह्मन! इस पृथ्वी पर जो शराबी, स्त्री और बालकों की हत्या करने वाले तथा अगम्या स्त्री के साथ समागम करने वाले देखे जाते हैं, वे भगवद्भक्तों के दर्शन मात्र से पापमुक्त हो जाते हैं। मैं भी भगवान् विष्णु की भक्ति के प्रसाद से वैष्णव हुआ हूँ।

द्विजवर! जहाँ गोपीचंदन रहता है, वह घर तीर्थस्वरूप है—यह भगवान् श्रीविष्णु का कथन है। जिस ब्राह्मण के घर में गोपीचंदन मौजूद रहता है, वहाँ कभी शोक, मोह तथा अमंगल नहीं होते। जिसके घर में रात-दिन गोपीचंदन प्रस्तुत रहता है,

उसके पूर्वज सुखी होते हैं तथा सदा उसकी संतति बढ़ती है। गोपी-तालाब से उत्पन्न होने वाली मिट्टी परम पवित्र एवं शरीर का शोधन करने वाली है। देह में उसका लेप करने से सारे रोग नष्ट होते हैं तथा मानसिक चिंताएँ भी दूर हो जाती हैं। अतः पुरुषों द्वारा शरीर में धारण किया हुआ गोपीचंदन संपूर्ण कामनाओं की पूर्ति तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है। इसका ध्यान और पूजन करना चाहिए। यह मल-दोष का विनाश करने वाला है। इसके स्पर्श मात्र से मनुष्य पवित्र हो जाता है। वह अनंतकाल में मनुष्यों के लिए मुक्तिदाता परम पावन है। द्विजश्रेष्ठ! मैं क्या बताऊँ, गोपीचंदन मोक्ष प्रदान करने वाला है। भगवान् विष्णु का प्रिय तुलसी-काष्ठ, उसके मूल की मिट्टी, गोपीचंदन तथा हरिचंदन—इन चारों को एक में मिलाकर विद्वान पुरुष अपने शरीर में लगाए। जो ऐसा करता है, उसके द्वारा जम्बूद्वीप के समस्त तीर्थों का सदा के लिए सेवन हो जाता है। जो गोपीचंदन को घिसकर उसका तिलक लगाता है, वह सब पापों से मुक्त हो श्रीविष्णु के परम पद को प्राप्त होता है। जिस पुरुष ने गोपीचंदन धारण कर लिया, उसने मानो गया में जाकर अपने पिता का श्राद्ध-तर्पण आदि सब कुछ कर लिया।

तिलक से बारह देवता प्रसन्न

अब मैं प्रसन्नतापूर्वक तिलक की विधि का वर्णन करता हूँ। ललाट में केशव, कंठ में श्रीपुरुषोत्तम, नाभि में नारायणदेव, हृदय में वैकुंठ, बायीं पसरली में दामोदर, दाहिनी पसली में त्रिविक्रम, मस्तक पर हृषीकेश, पीठ में पद्मनाभ, कानों में गंगा-यमुना तथा दोनों भुजाओं में श्रीकृष्ण और हरि का निवास समझना चाहिए। उपयुक्त स्थानों में तिलक करने से ये बारह देवता संतुष्ट होते हैं। तिलक करते समय इन बारह नामों का उच्चारण करना चाहिए। जो ऐसा करता है, वह सब पापों से शुद्ध होकर विष्णुलोक में जाता है। भगवान् के चरणोदक को पीना चाहिए और पुत्र, मित्र तथा स्त्री आदि समस्त परिवार के शरीर पर उसे छिड़कना चाहिए। श्री विष्णु का चरणोदक यदि पी लिया जाए तो वह करोड़ों जन्मों के पाप का नाश करने वाला होता है।

धनावंशीय तिलक

धनावंशियों में तिलक का बड़ा महत्त्व है। सधवा माताएँ-बहिनों के लिए जो महत्त्व सिंदूर लगाने का है, वैष्णवों के ललाट, कंठ, बाजू, वक्ष आदि स्थलों पर तिलक लगाए जाने का महत्त्व उससे कुछ कम नहीं है।

वैष्णवों के पवित्र ग्रंथ 'पद्म पुराण' के पाँचवें भाग में वैष्णवों द्वारा लगाए जाने वाले ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक के धारण करने की विधि तथा उक्त तिलक का माहात्म्य वर्णित है। ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक का महत्त्व समझाते हुए भगवान् शंकर पार्वती से कहते हैं कि 'उत्तम वैष्णव ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण कर भव-बंधन से मुक्त हो जाता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र के रूप में स्वयं भगवान विष्णु लक्ष्मी सहित ललाट पर विराजे हुए होते हैं। इसलिए जो व्यक्ति इसे धारण किए होता है, उसके शरीर में भगवान का निर्मल विग्रह स्थापित हो गया। ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करने से सभी तीर्थों एवं यज्ञों का पुण्य प्राप्त होता है। ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी व्यक्ति सभी लोकों में सूपूज्य बनता है। इससे सभी पापों की शुद्धि तथा अभीष्ट फलों की प्राप्ति होती है। ऊर्ध्वपुण्ड्र धारित व्यक्ति को जो जन देखता है उसको पापों से मुक्ति मिलती है तथा नमस्कार करने से सर्व दान का फल प्राप्त होता है। श्राद्धकाल में ऊर्ध्वपुण्ड्र धारित विप्र को भोजन कराने से पितृ तृप्त होते हैं तथा गया-श्राद्ध का फल मिलता है।

ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण कर जो व्यक्ति यज्ञ, दान, तप, जप, हवन आदि करता है तो उसे अनंत पुण्यों की प्राप्ति होती है। ऊर्ध्वपुण्ड्र रहित व्यक्ति को श्मशान की भाँति बिल्कुल नहीं देखना चाहिए। जो वैष्णव बिना ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाए धार्मिक कार्यों को संपादित करता है तो वे निष्फल जाते हैं।

'हिंदू धर्म कोश' में ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करने के संबंध में कहा है कि ब्राह्मण जल, मिट्टी, भस्म और चंदन से ऊर्ध्वपुण्ड्र करे। ऊर्ध्वपुण्ड्र वैष्णव संपद्राय का विशेष चिह्न है। यह गोपीचंदन से ललाट पर एक, दो या तीन खड़ी लंब रेखाओं से बनाया जाता है।

कहा गया है कि वैष्णव ऊर्ध्वपुण्ड्र, क्षत्रिय त्रिपुण्ड्र तथा वैश्य अर्धचंद्र तथा शूद्र वर्तुलाकार चंदन का टीका लगाए। ऊर्ध्वपुण्ड्र के मध्य कुंकुम् या रोली से मस्तक के मध्य एक रेखा बनाना लक्ष्मी या 'श्री' का रूप कहा जाता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र की पत्रकार दो रेखाएँ भगवान् विष्णु के चरण चिह्न माने जाते हैं।

सगुण उपासना में तिलक का अत्यधिक महत्त्व है। इसे सांप्रदायिक आचार का मुख्य अंग माना जाता है। वैष्णवजन की दैनिक क्रिया-आचार का यह भाग है। यह संप्रदाय विशेष का चिह्न भी है, इससे उक्त संप्रदाय का बोध साधक का रूपदर्शन करते ही हो जाता है। वैष्णवी दीक्षा प्रदान करते समय तब-तक दीक्षा प्रदान नहीं की जाती, जब तक उस संप्रदाय के तिलक को स्वीकार नहीं किया जाता। तिलक दीक्षा का दीखता बाह्य प्रमाण है। इस पर समय का परिवर्तन (देश-काल) भी लागू नहीं होता। उदाहरणार्थ 600 वर्षों से भी अधिक पूर्व रामानंदजी जिस ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक को धारण करते थे उनके अनुयायी आज भी सिंहासन सहित श्वेत ऊर्ध्वपुण्ड्र को मध्य में श्री टीका लगाकर धारण करते हैं जबकि धनावंशी स्वामी इसे सिंहासन रहित रूप में धारण करते हैं। इसे गलता गादी के कृष्णदासजी पयहारी धारण किया करते थे।

धनावंशीय तिलक परम्परा

धनावंशीय तिलक परम्परा रामानंदीय वैष्णव परम्परा पर आधारित है। पूर्व में यह परम्परा रामानुज से जुड़ती है। ऊर्ध्वपुण्ड्र में आगे चलकर थोड़े-थोड़े भेद हो गए। सिंहासन सहित ऊर्ध्वपुण्ड्र को 'तिंगल' तथा सिंहासन रहित को 'बड़गल' कहा गया। तिलक में जो सिंहासन T भाग है वह भ्रकृटि के संधि-स्थल के नीचे तथा नासिका मूल पर रहता है तथा सिंहासन से मिली हुई मस्तक के दाएँ-बाएँ गोपीचंदन से जो रेखाएँ खींची जाती हैं उन्हें ऊर्ध्वपुण्ड्र कहते हैं। 'श्रीरेखा' कुमकुम से ऊर्ध्वपुण्ड्र के मध्य लगाई जाती है। तिलक के तीनों अंग मिलकर 'तिंगल' कहलाता है तथा सिंहासन न रहने पर बड़गल। तिलक में जिसे सिंहासन कहते हैं—वह हनुमानजी का प्रतीक है। ऊर्ध्वपुण्ड्र की दोनों रेखाएँ श्रीराम-लक्ष्मण की प्रतीक हैं। श्रीरेखा—सीताजी की प्रतीक है। इस प्रकार यह तिलक समूचे राम-दरबार का द्योतक है। कतिपय संत ऊर्ध्वपुण्ड्र की रेखाओं को ज्ञान और वैराग्य की प्रतीक मानते हैं। मध्य श्री रेखा भक्ति की प्रतीक है।

भगवान विष्णु के आंवला अर्पण

पद्मपुराण में उल्लेख है—आंवले का फल समस्त लोकों में परम पवित्र है। इस फल को भगवान के अर्पण करने पर वे अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। यह पवित्र और शुभ माना जाता है। इसके भक्षण से मनुष्य पाप मुक्त हो जाता है। आंवला खाने से आयु बढ़ती है। एकादशी के दिन यदि एक ही आंवला मिल जाए तो उसके सामने गंगा, गया, काशी और पुष्कर आदि तीर्थ कोई विशेष महत्त्व नहीं रखते। दोनों पक्षों की एकादशी को जो आंवले के पानी से स्नान करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जहाँ आंवले का फल मौजूद होता है, वहाँ भगवान् विष्णु सदैव विराजमान रहते हैं। उस घर में लक्ष्मी का सुस्थिर वास रहता है। रविवार तथा सप्तमी तिथि, संक्रांति, शुक्रवार, षष्ठी, प्रतिपदा, नवमी और अमावस्या को आंवले का परित्याग करें।

धनावंशीय वैष्णवों के लिए तुलसी-वृक्ष की अनिवार्यता

शिवजी बोले—नारद! सुनो; अब मैं तुलसी का माहात्म्य बताता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत किए हुए पाप से छुटकारा पा जाता है। तुलसी का पत्ता, फूल, फल, मूल, शाखा, छाल, तना और मिट्टी आदि सभी पावन हैं। जिनका मृत शरीर तुलसी-काष्ठ की आग से जलाया जाता है, वे विष्णुलोक में जाते हैं। मृत पुरुष यदि अगम्यागमन आदि महान पापों से ग्रस्त हो, तो भी तुलसी-काष्ठ की अग्नि से देह का दाह-संस्कार होने पर वह शुद्ध हो जाता है। जो मृत पुरुष के संपूर्ण अंगों में तुलसी का काष्ठ देकर पश्चात् उसका दाह-संस्कार करता है, वह भी पाप से मुक्त हो जाता है। जिसकी मृत्यु के समय श्रीहरि का कीर्तन और स्मरण हो तथा तुलसी की लकड़ी से जिसके शरीर का दाह किया जाए, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। यदि दाह-संस्कार के समय अन्य लकड़ियों के भीतर एक भी तुलसी का काष्ठ हो तो करोड़ों पापों से युक्त होने पर भी मनुष्य की मुक्ति हो जाती है। तुलसी की लकड़ी से मिश्रित होने पर सभी काष्ठ पवित्र हो जाते हैं। तुलसी-काष्ठ की अग्नि से मृत मनुष्य का दाह होता देख विष्णुदूत ही आकर उस वैकुंठ में ले जाते हैं; यमराज के दूत उसे नहीं ले जा सकते। वह करोड़ों जन्मों के पाप से मुक्त हो भगवान् विष्णु को प्राप्त होता है। जो मनुष्य तुलसी-काष्ठ की अग्नि में जलाए जाते हैं, उन्हें विमान पर बैठकर वैकुंठ में जाते देख देवता उनके ऊपर पुष्पांजलि चढ़ाते हैं। ऐसे पुरुष को देखकर भगवान् विष्णु और शिव संतुष्ट होते हैं तथा श्री जनार्दन उसके सामने जा हाथ पकड़ कर उसे अपने धाम में ले जाते हैं। जिस अग्निशाला अथवा श्मशान भूमि में घी के साथ तुलसी-काष्ठ की अग्नि प्रज्वलित होती है, वहाँ जाने से मनुष्यों का पातक भस्म हो जाता है।

जो ब्राह्मण तुलसी-काष्ठ की अग्नि में हवन करते हैं, उन्हें एक-एक सिक्थ (भात के दाने) अथवा एक-एक तिल में अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है। जो भगवान् को तुलसी-काष्ठ का धूप देता है, वह उसके फलस्वरूप सौ यज्ञानुष्ठान तथा सौ गोदान का पुण्य प्राप्त करता है। जो तुलसी की लकड़ी की आँच से भगवान् का नैवेद्य

तैयार करता है, उसका वह अन्न यदि थोड़ा-सा भी भगवान् केशव को अर्पण किया जाए तो वह मेरु के समान अन्नदान का फल देने वाला होता है। तुलसी-काष्ठ की आग से भगवान् के लिए दीपक जलाता है, उसे दस करोड़ दीप-दान का पुण्य प्राप्त होता है। इस लोक में पृथ्वी पर उसके समान वैष्णव दूसरा कोई नहीं दिखाई देता। जो भगवान् श्रीकृष्ण को तुलसी-काष्ठ का चंदन अर्पण करता है तथा उनके श्रीविग्रह में उस चंदन को भक्तिपूर्वक लगता है वह सदा श्रीहरि के समीप रमण करता है। जो मनुष्य अपने अंग में तुलसी की कीचड़ लगाकर श्रीविष्णु का पूजन करता है, उसे एक ही दिन में सौ दिनों के पूजन का पुण्य मिल जाता है। जो पितरों के पिंड में तुलसी-दल मिलाकर दान करता है, उसे एक ही दिन में सौ दिनों के पूजन का पुण्य मिल जाता है। जो पितरों के पिंड में तुलसी-दल मिलाकर दान करता है, उसके दिए हुए एक दिन के पिंड से पितरों को सौ वर्षों तक तृप्ति बनी रहती है। तुलसी की जड़ की मिट्टी के द्वारा विशेष रूप से स्नान करना चाहिए। इससे जब तक वह मिट्टी शरीर में लगी रहती है, तब तक स्नान करने वाले पुरुष को तीर्थ-स्नान का फल मिलता है। जो तुलसी की नई मंजरी से भगवान् की पूजा करता है, उसे नाना प्रकार के पुष्पों द्वारा किए हुए पूजन का फल प्राप्त होता है। जब तक सूर्य और चंद्रमा है, तब तक वह उसका पुण्य भोगता है। जिस घर में तुलसी-वृक्ष का बगीचा है, उसके दर्शन और स्पर्श से भी ब्रह्महत्या आदि सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

जिस-जिस घर, गाँव अथवा वन में तुलसी का वृक्ष हो, वहाँ-वहाँ जगदीश्वर श्रीविष्णु प्रसन्नचित्त होकर निवास करते हैं। उस घर में दरिद्रता नहीं रहती और बंधुओं से वियोग नहीं होता। जहाँ तुलसी विराजमान होती है, वहाँ दुःख, भय और रोग नहीं ठहरते। यों तो तुलसी सर्वत्र ही पवित्र होती है, किंतु पुण्यक्षेत्र में वे अधिक पावन मानी गई हैं। भगवान् के समीप पृथ्वी तल पर तुलसी को लगाने से सदा विष्णुपद (वैकुंठ-धाम) की प्राप्ति होती है। तुलसी द्वारा भक्तिपूर्वक पूजित होने पर शान्तिकारक भगवान् श्रीहरि भयंकर उत्पातों, रोगों तथा अनेक दुर्निमित्तों का भी नाश कर डालते हैं। जहाँ तुलसी की सुगंध लेकर हवा चलती है, वहाँ की दसों दिशाएँ और चारों प्रकार के जीव पवित्र हो जाते हैं। मुनिश्रेष्ठ! जिस गृह में तुलसी के मूल की मिट्टी मौजूद है, वहाँ संपूर्ण देवता तथा कल्याणमय भगवान् श्रीहरि सर्वदा स्थित रहते हैं। ब्रह्मन! तुलसी-वन की छाया जहाँ-जहाँ जाती हो, वहाँ-वहाँ पितरों की तृप्ति के लिए तर्पण करना चाहिए।

नारद! जहाँ तुलसी का समुदाय पड़ा हो, वहाँ किया हुआ पिंडदान आदि पितरों के लिए अक्षय होता है। तुलसी की जड़ में ब्रह्मा, मध्यभाग में भगवान् जनार्दन तथा मंजरी में श्रीरुद्रदेव का निवास है; इसी से वह पावन मानी गई है। विशेषतः शिव-मंदिर में यदि तुलसी का वृक्ष लगाया जाए तो उससे जितने बीज तैयार होते हैं, उतने ही युगों तक मनुष्य स्वर्गलोक में निवास करता है। जो पार्वण श्राद्ध के अवसर पर, श्रवण मास में तथा संक्रान्ति के दिन तुलसी का पौधा लगाता है, उसके लिए वह अत्यंत पुण्यदायिनी होती है। जो प्रतिदिन तुलसी-दल से भगवान् की पूजा करता है, वह यदि दरिद्र हे तो धनवान् हो जाता है। तुलसी की मूर्ति संपूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करने वाली होती है; वह श्रीकृष्ण की कीर्ति प्रदान करती है।

तुलसी का माहात्म्य

धनावंशी परिवारों में तुलसी के पौधे का होना अत्यावश्यक है। तुलसी के पत्र और पुष्प का बड़ा भारी महत्त्व है। पद्मपुराण के 'सृष्टि खंड' में आदि देव भगवान् शिव स्वयं कार्तिकेयजी की जिज्ञासा पर तुलसी के महत्त्व को इस प्रकार वर्णित करते हैं—

महादेवजी ने कहा—'पुत्र, सब प्रकार के पत्तों और पुष्पों की अपेक्षा तुलसी ही श्रेष्ठ मानी गई है। वह परम मंगलमयी, समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली, शुद्ध, श्रीविष्णु को अत्यंत प्रिय तथा 'वैष्णवी' नाम धारण करने वाली है। वह संपूर्ण लोक में श्रेष्ठ, शत्रु तथा भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली है। भगवान् श्रीविष्णु ने पूर्वकाल में संपूर्ण लोकों का हित करने के लिए तुलसी का वृक्ष रोपा था। तुलसी के पत्ते और पुष्प सब धर्मों में प्रतिष्ठित हैं। जैसे भगवान् श्रीविष्णु को लक्ष्मी और मैं दोनों प्रिय हैं, उसी प्रकार यह तुलसी देवी भी परम प्रिय है। हम तीनों के सिवाय कोई चौथा ऐसा नहीं जान पड़ता, जो भगवान् को इतना प्रिय हो। तुलसी-दल के बिना दूसरे-दूसरे फूलों, पत्तों तथा चंदन आदि के लेपों से भगवान् श्रीविष्णु को उतना संतोष नहीं होता। जिसने तुलसी-दल के द्वारा पूर्ण श्रद्धा के साथ प्रतिदिन भगवान् श्रीविष्णु का पूजन किया है, उसने दान, होम, यज्ञ और व्रत आदि सब पूर्ण कर लिए। तुलसी-दल से भगवान् की पूजा कर लेने पर कांति, सुख, भोग सामग्री, यश, लक्ष्मी, श्रेष्ठ कुल, शील, पत्नी, पुत्र, कन्या, धन, राज्य, आरोग्य, ज्ञान, विज्ञान, वेद, वेदांग, शास्त्र, पुराण, तंत्र और संहिता—सब कुछ मैं करतलगत समझता हूँ। जैसे पुण्य सलिला गंगा मुक्ति प्रदान करने वाली है, उसी प्रकार यह तुलसी भी कल्याण करने वाली है।

स्कंद, (कार्तिकेय का नाम है) यदि मंजरीयुक्त तुलसी-पत्रों के द्वारा भगवान् श्रीविष्णु की पूजी की जाए तो उसके पुण्य फल का वर्णन करना असंभव है। जहाँ तुलसी का वन है, वहीं भगवान् श्रीकृष्ण की समीपता है, तथा वहीं ब्रह्मा और लक्ष्मीजी

भी संपूर्ण देवताओं के साथ विराजमान हैं। इसलिए अपने निकटवर्ती स्थान में तुलसी देवी को रोप कर उनकी पूजा करनी चाहिए। तुलसी के निकट जो स्तोत्र-मंत्र आदि का जप किया जाता है, वह सब अनंत गुणा फल देने वाला होता है।

प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्म राक्षस, भूत और दैत्य आदि सब तुलसी के वृक्ष से दूर भागते हैं। ब्रह्महत्या आदि पाप तथा खोटे विचार से उत्पन्न होने वाले रोग—ये सब तुलसी-वृक्ष के समीप नष्ट हो जाते हैं। जिसने भी भगवान् की पूजा के लिए पृथ्वी पर तुलसी का बगीचा लगा रखा है, उसने उत्तम दक्षिणाओं से युक्त सौ यज्ञों का विधिवत् अनुष्ठान पूर्ण कर लिया है। जो भगवान् की प्रतिमाओं तथा शालग्राम शिलाओं पर चढ़े हुए तुलसी-दल को प्रसाद के रूप में ग्रहण करता है, वह श्रीविष्णु के सायुज्य को प्राप्त होता है। जो श्रीहरि की पूजा करके उन्हें निवेदन किए हुए तुलसी-दल को अपने मस्तक पर धारण करता है, वह पाप से शुद्ध होकर स्वर्गलोक को प्राप्त होता है। कलियुग में तुलसी का पूजन, कीर्तन, ध्यान, रोपण और धारण करने से वह पाप को जलाती है और स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करती है। जो तुलसी के पूजन आदि का दूसरों को उपदेश देता है और स्वयं भी आचरण करता है, वह भगवान् श्री लक्ष्मीपति के परम धाम को प्राप्त होता है।'

पूजने कीर्तने ध्याने रोपणे धारणे कलौ।
तुलसी दहते पापं स्वर्गं मोक्षं ददाति च।।
उपदेशं ददेदस्याः स्वयमाचरते पुनः।
स याति परमं स्थानं माधवस्य निकेतनम्।।

(पद्मपुराण, 58/131-132)

जो वस्तु भगवान् श्रीविष्णु को प्रिय जान पड़ती है, वह मुझे भी अत्यंत प्रिय है। श्राद्ध और यज्ञ आदि कार्यों में तुलसी का एक पत्ता भी महान पुण्य प्रदान करने वाला है। जिसने तुलसी की सेवा की है, उसने गुरु, ब्राह्मण, देवता और तीर्थ—सबका भली-भाँति सेवन कर लिया। इसलिए षडानन, तुम तुलसी का सेवन करो। जो शिखा में तुलसी स्थापित करके प्राणों का परित्याग करता है, वह पाप राशि से मुक्त हो जाता है। राजसूय आदि यज्ञ, भली-भाँति के व्रत तथा संयम के द्वारा धीर पुरुष जिस गति को प्राप्त करता है, वही उसे तुलसी की सेवा से मिल जाती है। तुलसी के एक पत्र से श्रीहरि की पूजा करके मनुष्य वैष्णवत्व को प्राप्त होता है। उसके लिए अन्यान्य शास्त्रों के विस्तार की क्या आवश्यकता है? जिसने तुलसी की शाखा तथा कोमल पत्तियों से

भगवान् श्रीविष्णु की पूजा की है, वह कभी माता का दूध नहीं पीता—उसका पुनर्जन्म नहीं होता। कोमल तुलसी-दलों के द्वारा प्रतिदिन श्रीहरि की पूजा करके मनुष्य अपनी सैकड़ों और हजारों पीढ़ियों को पवित्र कर सकता है। ये मैंने तुम से तुलसी के प्रधान-प्रधान गुण बताए हैं। संपूर्ण गुणों का वर्णन तो बहुत अधिक समय लगने पर भी नहीं हो सकता। यह उपाख्यान पुण्यराशि का संचय करने वाला है। जो प्रतिदिन इसका श्रवण करता है, वह पूर्वजन्म के किए हुए पाप तथा जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाता है।

तुलसी स्तोत्र

शतानन्द मुनि तुलसी के स्तोत्र का वर्णन करते हैं—

तुलस्य मृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये।
केशवार्थं चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने।
त्वदंगसम्भवैर्नित्यं पूजयामि यथा हरिम्।
तथा कुरु पवित्रांगि कलौ मलविनाशिनी।

(पद्मपुराण, स्मृति खंड)

तुलसी का नामोच्चारण करने पर असुरों का दर्प दलन करने वाले भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं। मनुष्य के पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। जिसके दर्शन मात्र से करोड़ों गोदान का फल होता है, उस तुलसी का पूजन और वंदन लोग क्यों न करें। कलियुग में वे मनुष्य धन्य हैं, जिनके घर में शालग्राम शिला का पूजन संपन्न करने के लिए प्रतिदिन तुलसी का वृक्ष भूतल पर लहलहाता रहता है। जो कलियुग में भगवान् श्रीकेशव की पूजा के लिए पृथ्वी पर तुलसी का वृक्ष लगाते हैं, उन पर यदि यमराज अपने किंकरों सहित रुष्ट हो जाए तो भी वे उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

उपरोक्त श्लोक का अर्थ है—

'तुलसी, तुम अमृत से उत्पन्न हो और केशव को सदा ही प्रिय हो। कल्याणी! मैं भगवान् की पूजा के लिए तुम्हारे पत्तों को चुनता हूँ। तुम मेरे लिए वरदायिनी बनो। तुम्हारे श्रीअंगों से उत्पन्न होने वाले पत्रों और मंजरियों द्वारा मैं सदा ही जिस प्रकार श्रीहरि का पूजन कर सकूँ, वैसा उपाय करो। पवित्रांगी तुलसी, तुम कलि मल का नाश करने वाली हो।' इस भाव के मंत्रों से जो तुलसी-दल को चुनकर उनसे भगवान् वासुदेव का पूजन करता है, उसकी पूजा का करोड़ों गुना फल होता है।

देवेश्वरी, बड़े-बड़े देवता भी तुम्हारे प्रभाव का गायन करते हैं। मुनि, सिद्ध, गंधर्व, पाताल निवासी साक्षात् नागराज शेष तथा संपूर्ण देवता भी तुम्हारे प्रभावों को नहीं जानते हैं। जिस समय क्षीर समुद्र के मंथन का उद्योग प्रारंभ हुआ था, उस समय श्रीविष्णु के आनन्दांश से तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ था। पूर्वकाल में श्रीहरि ने तुम्हें अपने मस्तक पर धारण किया था। देवि, उस समय श्रीविष्णु के शरीर का सम्पर्क पाकर तुम परम पवित्र हो गई थीं। तुलसी, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। तुम्हारे श्रीअंग से उत्पन्न पत्रों द्वारा जिस प्रकार श्रीहरि की पूजा कर सकूँ, ऐसी कृपा करो, जिससे मैं निर्विघ्नतापूर्वक परम गति को प्राप्त होऊँ। साक्षात् श्रीकृष्ण ने तुम्हें गौमती तट पर लगाया और बढ़ाया था। वृंदावन में विचरते समय उन्होंने संपूर्ण जगत् और गोपियों के हित के लिए तुलसी का सेवन किया। जगत्प्रिया तुलसी, पूर्वकाल में वसिष्ठ के कथनानुसार श्रीरामचंद्रजी ने भी राक्षसों का वध करने के उद्देश्य से सरयू के तट पर तुम्हें लगाया था। तुलसीदेवी, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। श्रीरामचंद्रजी से वियोग हो जाने पर अशोक-वाटिका में रहते हुए जनककिशोरी सीता ने तुम्हारा ही ध्यान किया था, जिससे उन्हें पुनः अपने प्रियतम का समागम प्राप्त हुआ। पूर्वकाल में हिमालय पर्वत पर भगवान् शंकर की प्राप्ति के लिए पार्वती देवी ने तुम्हें लगाया और अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए तुम्हारा सेवन किया था। तुलसीदेवी, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। संपूर्ण देवांगनाओं और किन्नरों ने भी दुःस्वप्न का नाश करने के लिए नंदनवन में तुम्हारा सेवन किया था। देवि, तुम्हें मेरा नमस्कार है। धर्मारण्य गया में साक्षात् पितरों ने तुलसी का सेवन किया था। दण्डकारण्य में भगवान् श्रीरामचंद्रजी ने अपने हित-साधन की इच्छा से परम पवित्र तुलसी का वृक्ष लगाया तथा लक्ष्मण और सीता ने भी बड़ी भक्ति के साथ उसे पोषित किया था। जिस प्रकार शास्त्रों में गंगाजी को त्रिभुवन-व्यापिनी कहा गया है, उसी प्रकार तुलसीदेवी भी संपूर्ण चराचर जगत् में दृष्टिगोचर होती हैं। तुलसी को ग्रहण कर मनुष्य पातकों से मुक्त हो जाता है। और तो और, मुनीश्वरों, तुलसी के सेवन से ब्रह्महत्या भी दूर हो जाती है। तुलसी के पत्ते से टपकता हुआ जल जो अपने सिर पर धारण करता है, उसे गंगा स्नान और दस गोदान का फल प्राप्त होता है। देवि, मुझ पर प्रसन्न होओ। देवेश्वरि, हरिप्रिये, मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। क्षीरसागर के मंथन से प्रकट हुई तुलसीदेवी, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

द्वादशी की रात्रि में जागरण करके जो इस तुलसी स्तोत्र का पाठ करता है, भगवान् श्रीविष्णु उसके बत्तीस अपराध क्षमा करते हैं। बाल्यावस्था, कुमारावस्था,

जवानी और बुढ़ापे में भी जितने पाप किए होते हैं, वे सब तुलसी स्तोत्र के पाठ से नष्ट हो जाते हैं। तुलसी के स्तोत्र से संतुष्ट होकर भगवान् सुख और अभ्युदय प्रदान करते हैं। जिस घर में तुलसी का स्तोत्र लिखा हुआ विद्यमान रहता है, उसका कभी अशुभ नहीं होता, उसका सब कुछ मंगलमय होता है, किंचित भी अमंगल नहीं होता। उसके लिए सदा सुकाल रहता है। वह घर प्रचुर धन-धान्य से भरा रहता है। तुलसी स्तोत्र का पाठ करने वाले मनुष्य के हृदय में भगवान् श्रीविष्णु के प्रति अविचल भक्ति होती है, तथा उसका वैष्णवों से कभी वियोग नहीं होता। इतना ही नहीं, उसकी बुद्धि कभी अधर्म में नहीं प्रवृत्त होती। जो द्वादशी की रात्रि में जागरण करके तुलसी स्तोत्र का पाठ करता है, उसे करोड़ों तीर्थों के सेवन का फल प्राप्त होता है।

हमारे धनावंशी परिवारों में तुलसी विवाह का भी विधान है, जिसे प्रति वर्ष ठाकुरजी के मंदिर का पुजारी सम्पन्न करवाता है, अगर मंदिर का पुजारी (वैष्णव) उपलब्ध नहीं होता है तो पवित्र होकर कोई भी धनावंशी तुलसी-विवाह सम्पन्न करा सकता है, क्योंकि सदाचरण युक्त, प्रभु प्रेमी प्रत्येक धनावंशी वैष्णवता से युक्त होता है।

वैष्णवों के लिए प्रयागराज तीर्थ का महत्त्व

महादेवजी कहते हैं—नारद! अब मैं वेदों में कही हुई प्रयाग तीर्थ की महिमा का वर्णन करूँगा। जो मनुष्य पुण्य-कर्म करने वाले हैं, वे ही प्रयाग में निवास करते हैं। जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती—तीनों नदियों का संगम है, वही तीर्थप्रवर प्रयाग है? वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। इसके समान तीर्थ तीनों लोकों में न कोई हुआ है, न होगा। जैसे ग्रहों में सूर्य और नक्षत्रों में चंद्रमा श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सब तीर्थों में प्रयाग नामक तीर्थ उत्तम है। विद्वन्! जो प्रातःकाल प्रयाग में स्नान करता है, वह महान पाप से मुक्त हो परम-पद को प्राप्त होता है। जो दरिद्रता को दूर करना चाहता हो, उसे प्रयाग में जाकर कुछ दान करना चाहिए। जो मनुष्य प्रयाग में जाकर वहाँ स्नान करता है, वह धनवान् और दीर्घजीवी होता है। वहाँ जाकर मनुष्य अक्षयवट का दर्शन करता है, उसके दर्शन मात्र से ब्रह्महत्या का पाप नष्ट होता है। उसे आदिवट कहा गया है। कल्पांत में भी उसका दर्शन होता है। उसके पत्र पर भगवान् विष्णु शयन करते हैं; इसलिए वह अविनाशी माना गया है। विष्णुभक्त मनुष्य प्रयाग में अक्षयवट का पूजन करते हैं। उस वृक्ष में सूत लपेटकर उसकी पूजा करनी चाहिए।

वहाँ 'माधव' नाम से प्रसिद्ध भगवान् विष्णु नित्य विराजमान रहते हैं; उनका दर्शन अवश्य करना चाहिए। ऐसा करने वाला पुरुष महापापों से छुटकारा पा जाता है। देवता, ऋषि और मनुष्य—सभी वहाँ अपने-अपने योग्य का स्थान का आश्रय लेकर नित्य निवास करते हैं। गोहत्यारा, चांडाल, दुष्ट, दूषितहृदय, बालघाती तथा अज्ञानी मनुष्य भी यदि वहाँ मृत्यु को प्राप्त होता है तो चतुर्भुजरूप धारण करके सदा ही वैकुंठधाम में निवास करता है। जो मानव प्रयाग में माघ-स्नान करता है, उसे प्राप्त होने वाले पुण्यफल की कोई गणना नहीं है। भगवान् नारायण प्रयाग में स्नान करने वाले पुरुषों को भोग और मोक्ष प्रदान करते हैं। जैसे ग्रहों में सूर्य और नक्षत्रों में चंद्रमा श्रेष्ठ है, उसी प्रकार महीनों में माघ मास श्रेष्ठ है। यह सभी कर्मों के लिए उत्तम है। विद्वन्! यह माघ-मकर का योग चराचर त्रिलोकी के लिए दुर्लभ है। जो इसमें यत्नपूर्वक सात,

पाँच अथवा तीन दिन भी प्रयाग-स्नान कर लेता है, उसका अभ्युदय होता है। मनुष्य आदि चराचर जीव प्रयाग तीर्थ का सेवन करके वैकुंठ-लोक को प्राप्त होते हैं। दिव्यलोक में रहने वाले जो वसिष्ठ और सनकादि ऋषि हैं, वे भी प्रयाग तीर्थ का बार-बार सेवन करते हैं। विष्णु, रुद्र और इन्द्र भी तीर्थप्रवर प्रयाग में निवास करते हैं। प्रयाग में दान और नियमों के पालन की प्रशंसा होती है। वहाँ स्नान और जलपान करने से पुनर्जन्म नहीं होता।

यों तो हर धनावंशी को जब-जब भी प्रयागराज में कुंभ होता है, उस समय वहाँ जाकर स्नान-दान आदि करना चाहिए, अगर ऐसा संभव न हो पाता है तो भगवान श्रीराम के प्रिय तीर्थ प्रयागराज में एक बार तो स्नान अवश्य ही करना चाहिए, वह सभी तीर्थों का राजा है।

वैष्णवों के पुष्कर आदि तीर्थों का वर्णन

श्रीपार्वतीजी ने कहा—सुव्रत! इस द्वीप में जो-जो तीर्थ हैं, उनकी गणना करके मुझे बताइये।

श्रीमहादेवजी बोले—सुरेश्वरि! इस द्वीप में सबके क्लेशों का नाश करने वाले महान देवता भगवान् केशव ही तीर्थरूप से विराजमान हैं। देवि! अब मैं तुम्हारे लिए उन तीर्थों का वर्णन करता हूँ। पहला पुष्कर तीर्थ है, जो सब तीर्थों में श्रेष्ठ और शुभकारक है। दूसर क्षेत्र काशीपुरी है, जो मुक्ति प्रदान करने वाली है। तीसरा नैमिष क्षेत्र है, जिसे ऋषियों ने परम पावन माना है। चौथा प्रयाग तीर्थ है, जो सब तीर्थों में उत्तम माना गया है। पाँचवाँ कामुक तीर्थ है, जिसकी उत्पत्ति गन्धमादन पर्वत पर बतायी गई है। छठा मानसरोवर तीर्थ है, जो देवताओं को भी अत्यंत रमणीय प्रतीत होता है। सातवाँ विश्वकाय तीर्थ है, उसकी स्थिति कल्याणमय अम्बर पर्वत पर बतायी गई है। आठवाँ गौतम नामक तीर्थ है, जिसकी स्थापना पूर्वकाल में मंदराचल पर्वत पर हुई थी। नवाँ मदोत्कट और दसवाँ रथचैत्रक तीर्थ है। ग्यारहवाँ कान्यकुब्ज तीर्थ है, जहाँ भगवान् वामन विराज रहे हैं। बारहवाँ मलयज तीर्थ है। इसके बाद कुब्जाम्रक, विश्वेश्वर, गिरिकर्ण, केदार और गतिदायक तीर्थ हैं। हिमालय के पृष्ठभाग में बाह्य तीर्थ, गोकर्ण में गोपक, हिमालय पर स्थानेश्वर, बिल्वक में विल्वपत्र, श्रीशैल में माधव तीर्थ, भद्रेश्वर में भद्र तीर्थ, वाराह क्षेत्र में विजय तीर्थ, वैष्णवगिरि पर वैष्णव तीर्थ, रुद्रकोट में रुद्र तीर्थ, कालंजर पर्वत पर पितृतीर्थ, कम्पिल में काम्पिल तीर्थ, मुकुट में कर्कोटक, गण्डकी में शालग्रामोद्भव तीर्थ, नर्मदा में शिवतीर्थ, मायापुरी में विश्वरूप तीर्थ, उत्पलाक्षा में सहस्राक्ष तीर्थ, रैवतक पर्वत पर जात तीर्थ, गया में पितृतीर्थ, रैवतक पर्वत पर जात तीर्थ, गया में पितृतीर्थ और विष्णुपादोद्भव तीर्थ, विपाशा (व्यास) में विपाप, पुण्ड्र-वर्धन में पाटल, सुपार्श्व में नारायण, त्रिकूट में विष्णु मंदिर, विपुल में विपुल, मलयाचल में कल्याण, कोटितीर्थ में कौरव, गन्धमादन में सुगन्ध, कुब्जांक में त्रिसंध्य, गंगाद्वार में हरिप्रिय, विंध्यप्रदेश में शैल तीर्थ, बदरिकाश्रम

में शुभ सारस्वत तीर्थ, कालिंदी में कालरूप, सह्य-पर्वत पर साह्याक और चंद्रप्रदेश में चंद्र तीर्थ है।

महाकाल में महेश्वर तीर्थ, विंध्य-पर्वत की कंदरा में अभयद और अमृत नामक तीर्थ, मंडप में विश्वरूप तीर्थ, ईश्वरपुर में स्वाहा तीर्थ, प्रचंडा में वैगलेय तीर्थ, अमरकंटक में चंडी तीर्थ, प्रभास क्षेत्र में सोमेश्वर तीर्थ, सरस्वती में पारावत तट पर देवामृत तीर्थ, महापद्म में महालय तीर्थ, पयोष्णी में पिंगलेश्वर, सिंहिका तथा सौरव में रवि तीर्थ, कृत्तिका क्षेत्र में कार्तिक तीर्थ, शंकरगिरि पर शंकर तीर्थ, सुभद्रा और समुद्र के संगम पर दिव्य उत्पल तीर्थ, विष्णु-पर्वत पर गणपति तीर्थ, जालंधर में विश्वमुख तीर्थ, तार एवं विष्णु-पर्वत पर तारक तीर्थ, देवदारुवन में पौण्ड्र तीर्थ, काश्मीर मंडल में पौष्क तीर्थ, हिमालय पर भौम, हिम, तुष्टिक और पौष्टिक तीर्थ, मायापुर में कपालमोचन तीर्थ, शंखोद्धार में शंखधारकदेव, पिण्ड में पिण्डन, सिद्धि में वैखानम और अच्छोद सरोवर पर विष्णुकाम तीर्थ है, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाला है। उत्तरकूल में औषध्य तीर्थ, कुशद्वीप में कुशोदक तीर्थ, वदंती में आश्मक तीर्थ, विंध्य-पर्वत पर वैमातृक तीर्थ और चित्त में ब्रह्ममय तीर्थ है, जो सब तीर्थों में पावन माना गया है। सुंदरि! इन सब तीर्थों में उत्तम तीर्थ का वर्णन सुनो। भगवान् विष्णु के नाम की समता करने वाला कोई तीर्थ न तो हुआ है और न होगा। भगवान् केशव की कृपा से उनका नाम लेने मात्र से ब्रह्महत्यारा, सुवर्ण चुराने वाला, बालघाती और गोहत्या करने वाला पुरुष भी पापमुक्त हो जाता है। कलियुग में द्वारकापुरी परम रमणीय है और वहाँ के देवता भगवान् श्रीकृष्ण परम धन्य है। जो मनुष्य वहाँ जाकर उनका दर्शन करते हैं, उन्हें अविचल मुक्ति प्राप्त होती है। महादेवि! ऐसे परम धन्य देवता सर्वेश्वर प्रभु श्रीविष्णु भगवान् का मैं निरंतर चिंतन करता रहता हूँ। इस प्रकार यहाँ अनेक तीर्थों का नामोल्लेख किया गया है। जो इनका जप करता अथवा इन्हें सुनता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। जो इन तीर्थों में स्नान करके पापहारी भगवान् नारायण का दर्शन करता है, वह सब पापों से मुक्त हो भगवान् विष्णु के सनातन धाम को जाता है। जगन्नाथपुरी महान तीर्थ है। वह सब लोकों को पवित्र करने वाली मानी गई है। जो श्रेष्ठ मानव वहाँ की यात्रा करते हैं, वे परम गति को प्राप्त होते हैं। जो श्राद्धकर्म में इन परम पवित्र तीर्थों के नाम सुनाता है, वह इस लोक में सुख भोगकर अंत में भगवान् विष्णु के सनातन धाम को जाता है। गोदान, श्राद्धदान अथवा देवपूजा के समय प्रतिदिन जो विद्वान इसका पाठ करता है, वह परमात्मा को प्राप्त होता है।

नरश्रेष्ठ! यदि तीर्थों का विधिपूर्वक दर्शन किया जाए तो वे पाप का नाश कर देते हैं, अब तीर्थसेवन की विधि का श्रवण करो। पहले स्त्री, पुत्रादि कुटुम्ब को मिथ्या समझकर उसकी ओर से अपने मन में वैराग्य उत्पन्न करे और मन-ही-मन भगवान् का स्मरण करता रहे। तदनन्तर 'राम-राम' की रट लगाते हुए तीर्थयात्रा आरम्भ करे, एक कोस जाने के पश्चात् वहाँ तीर्थ (पवित्र जलाशय) आदि में स्नान करके क्षौर करा डाले। यात्रा की विधि जानने वाले पुरुष के लिए ऐसा करना नितांत आवश्यक है। तीर्थों की ओर जाते हुए मनुष्यों के पाप उसके बालों पर ही स्थित रहते हैं, अत: उनका मुंडन अवश्य करावे। उसके बाद बिना गाँठ का डँडा, कमंडलु और मृगचर्म धारण करे तथा लोभ का त्याग करके तीर्थोपयोगी वेष बना ले। विधिपूर्वक यात्रा करने वाले मनुष्यों को विशेष रूप से फल की प्राप्ति होती है, इसलिए पूर्ण प्रयत्न करके तीर्थयात्रा की विधि का पालन करे। जिसके दोनों हाथ, दोनों पैर तथा मन अपने वश में होते हैं तथा जिसके भीतर विद्या, तपस्या और कीर्ति रहती है, वही तीर्थ के वास्तविक फल का भागी होता है। 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण भक्तवत्सल गोपते। शरण्य भगवन् विष्णो मां पाहि बहुसंसृते:' (19/25) जिह्वा से इस मंत्र का पाठ तथा मन से भगवान् का स्मरण करते हुए पैदल ही तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए; तभी वह महान अभ्युदय का साधक होता है। जो मनुष्य सवारी से यात्रा करता है उसका फल सवारी ढोने वाले प्राणी के साथ बराबर-बराबर बँट जाता है। जूता पहनकर जाने वाले को चौथाई फल मिलता है और बैलगाड़ी पर जाने वाले पुरुष को गोहत्या आदि का पाप लगता है। जो अनिच्छा से भी तीर्थयात्रा करता है, उसे उसका आधा फल मिल जाता है तथा पापक्षय भी होता ही है? किंतु विधि के साथ तीर्थदर्शन करने से विशेष फल की प्राप्ति होती है (यह ऊपर बताया जा चुका है)। इस प्रकार मैंने थोड़े ही में यह तीर्थ की विधि बताई है, इसका विस्तार नहीं किया है। इस विधि का आश्रय लेकर तुम पुरुषोत्तम का दर्शन करने के लिए जाओ। महाराज! भगवान् प्रसन्न होकर तुम्हें अपनी भक्ति प्रदान करेंगे, जिससे एक ही क्षण में तुम्हारे संसार-बंधन का नाश हो जाएगा। नरश्रेष्ठ! तीर्थयात्रा की यह विधि संपूर्ण पातकों का नाश करने वाली है, जो इसे सुनता है वह अपने सारे भयंकर पापों से छुटकारा पा जाता है।

धनावंशीय वैष्णवों के लिए गण्डकी नदी का माहात्म्य

गण्डकी नदी को शालग्रामी और नारायणी भी कहते हैं। देवता और असुर सभी इसका सेवन करते हैं। इसके पावन जल की उत्ताल तरंगे राशि-राशि पातकों को भी भस्म कर डालती हैं। यह अपने दर्शन से मानसिक, स्पर्श से कर्मजनित तथा जल का पान करने से वाणी द्वारा होने वाले पापों के समुदाय को दग्ध करती है। पूर्वकाल में प्रजापति ब्रह्माजी ने सब प्रजा को विशेष पाप में लिप्त देखकर अपने गण्डस्थल (गाल) के जल की बूँदों से इस पापनाशिनी नदी को उत्पन्न किया। जो उत्तम लहरों से सुशोभित इस पुण्यसलिला नदी के जल का स्पर्श करते हैं, वे मनुष्य पापी हों तो भी पुन: माता के गर्भ में प्रवेश नहीं करते। इसके भीतर से जो चक्र के चिह्नों द्वारा अलंकृत पत्थर प्रकट होते हैं, वे साक्षात् भगवान् के ही विग्रह हैं—भगवान् ही उनके रूप में प्रादुर्भूत होते हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन चक्र के चिह्न से युक्त शालग्राम-शिला का पूजन करता है वह फिर कभी माता के उदर में प्रवेश नहीं करता। जो बुद्धिमान् श्रेष्ठ शालग्राम-शिला का पूजन करता है, उसको दंभ और लोभ से रहित सदाचारी होना चाहिए। परायी स्त्री और पराये धन से मुँह मोड़कर यत्नपूर्वक चक्रांकित शालग्राम का पूजन करना चाहिए। द्वारका में लिया हुआ चक्र का चिह्न और गण्डकी नदी से उत्पन्न हुई शालग्राम की शिला—ये दोनों मनुष्यों के सौ जन्मों के पापों का आचरण करने वाला मनुष्य क्यों न हो, शालग्रामशिला का चरणामृत पीकर तत्काल पवित्र हो सकता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा वेदोक्त मार्ग पर स्थित रहने वाला शूद्र गृहस्थ भी शालग्राम की पूजा करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है। परंतु स्त्री को कभी शालग्राम-शिला का पूजन नहीं करना चाहिए। विधवा हो या सुहागिन, यदि वह स्वर्गलोक एवं आत्मकल्याण की इच्छा रखती है तो शालग्राम-शिला का स्पर्श न करे। यदि मोहवश उसका स्पर्श करती है तो अपने किए हुए पुण्य-समूह का त्याग करके तुरंत नरक में पड़ती है। कोई कितना ही पापाचारी और ब्रह्महत्यारा क्यों न हो, शालग्राम-शिला को स्नान कराया हुआ जल (भगवान् का चरणामृत) पी लेने पर परम गति को प्राप्त होता है। भगवान्

को निवेदित तुलसी, चंदन, जल, शंख, घंटाचक्र, शालग्राम-शिला, ताम्रपात्र, श्रीविष्णु का नाम तथा उनका चरणामृत—ये सभी वस्तुएँ पावन हैं। उपर्युक्त नौ वस्तुओं के साथ भगवान् का चरणामृत पापराशि को दग्ध करने वाला है। ऐसा संपूर्ण शास्त्रों के अर्थ को जानने वाले शांतचित्त महर्षियों का कथन है। समस्त तीर्थों में स्नान करने से तथा सब प्रकार के यज्ञों द्वारा भगवान् का पूजन करने से जो अद्‌भुत पुण्य होता है, वह भगवान् के चरणामृत की एक-एक बूँद में प्राप्त होता है।

चार, छ:, आठ आदि समसंख्या में शालग्राम-मूर्तियों की पूजा करनी चाहिए। परंतु समसंख्या में दो शालग्रामों की पूजा उचित नहीं है। इसी प्रकार विषम संख्या में भी शालग्राम मूर्तियों की पूजा होती है, किंतु विषम में तीन शालग्रामों की नहीं। द्वारका का चक्र तथा गण्डकी नदी के शालग्राम—इन दोनों का जहाँ समागम हो, वहाँ समुद्रगामिनी गंगा की उपस्थिति मानी जाती है। यदि शालग्राम शिलाएँ रूखी हों तो वे पुरुषों को आयु, लक्ष्मी और उत्तम कीर्ति से वंचित कर देती है; अत: जो चिकनी हों, जिनका रूप मनोहर हो, उन्हीं का पूजन करना चाहिए। वे लक्ष्मी प्रदान करती हैं। पुरुष को आयु की इच्छा हो या धन की, यदि वह शालग्राम-शिला का पूजन करता है तो उसकी ऐहलौकिक और पारलौकिक—सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। राजन्! जो मनुष्य बड़ा भाग्यवान् होता है, उसी के प्राणांत के समय जिह्वा पर भगवान् का पवित्र नाम आता है और उसी की छाती पर तथा आसपास शालग्राम-शिला मौजूद रहती है। प्राणों के निकलते समय अपने विश्वास या भावना में ही यदि शालग्राम-शिला की स्फुरणा हो जाए तो उस जीव की नि:संदेह मुक्ति हो जाती है। पूर्वकाल में भगवान् ने बुद्धिमान् राजा अम्बरीष से कहा था कि 'ब्राह्मण, संन्यासी तथा चिकनी शालग्राम-शिला—ये तीन इस भूंडल पर मेरे स्वरूप हैं। पापियों का पाप नाश करने के लिए मैंने ही ये स्वरूप धारण किए हैं।' जो अपने किसी प्रिय व्यक्ति को शालग्राम की पूजा करने का आदेश देता है वह स्वयं तो कृतार्थ होता ही है, अपने पूर्वजों को भी शीघ्र ही वैकुंठ पहुँचा देता है।

शालग्राम के प्रकारों में भगवद् दर्शन

अब शालग्राम-शिला की पूजा के संबंध में कुछ निवेदन करूँगा। चार भुजाधारी भगवान् विष्णु के दाहिनी एवं ऊर्ध्वभुजा के क्रम से अस्त्र विशेष ग्रहण करने पर केशव आदि नाम होते हैं अर्थात् दाहिनी ओर का ऊपर का हाथ, दाहिनी ओर का नीचे का हाथ, बायीं ओर का ऊपर का हाथ और बायीं ओर का नीचे का हाथ—इस क्रम से चारों हाथों में शंख, चक्र आदि आयुधों को क्रम या व्यतिक्रमपूर्वक धारण करने पर भगवान् की भिन्न-भिन्न संज्ञाएँ होती हैं। उन्हीं संज्ञाओं का निर्देश करते हुए यहाँ भगवान् का पूजन बतलाया जाता है। उपर्युक्त क्रम से चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करने वाले विष्णु का नाम 'केशव' है। पद्म, गदा, चक्र और शंख के क्रम से शस्त्र धारण करने पर उन्हें 'नारायण' कहते हैं। क्रमशः चक्र, शंख, पद्म और गदा ग्रहण करने से वे 'माधव' कहलाते हैं। गदा, पद्म, शंख और चक्र—इस क्रम से आयुध धारण करने वाले भगवान् का नाम 'गोविन्द' है। पद्म, शंख, चक्र और गदाधारी विष्णुरूप भगवान् को प्रणाम है। शंख, पद्म, गदा और चक्र धारण करने वाले मधुसूदन-विग्रह को नमस्कार है। गदा, चक्र, शंख और पद्म से युक्त त्रिविक्रम को तथा चक्र, गदा, पद्म और शंखधारी वामनमूर्ति को प्रणाम है। चक्र, पद्म, शंख और गदा धारण करने वाले श्रीधररूप को नमस्कार है। चक्र, गदा, शंख तथा पद्मधारी हृषीकेश! आपको प्रणाम है। पद्म, शंख, गदा और चक्र ग्रहण करने वाले पद्मनाभ-विग्रह को नमस्कार है। शंख, गदा, चक्र और पद्मधारी दामोदर! आपको मेरा प्रणाम है। शंख, कमल, चक्र तथा गदा धारण करने वाले संकर्षण को नमस्कार है। चक्र, शंख, गदा तथा पद्म से युक्त भगवान् वासुदेव! आपको प्रणाम है। शंख, चक्र, गदा और कमल आदि के द्वारा प्रद्युम्नमूर्ति धारण करने वाले भगवान् को नमस्कार है। गदा, शंख, कमल तथा चक्रधारी अनिरुद्ध को प्रणाम है। पद्म, शंख, गदा और चक्र से चिह्नित पुरुषोत्तम रूप को नमस्कार है। गदा, शंख, चक्र और पद्म ग्रहण करने वाले अधोक्षज को प्रणाम है। पद्म, गदा, शंख और चक्र धारण करने वाले नृसिंह भगवान् को नमस्कार है। पद्म,

चक्र, शंख और गदा लेने वाले अच्युतस्वरूप को प्रणाम है। गदा, पद्म, चक्र और शंखधारी श्रीकृष्ण-विग्रह को नमस्कार है।

जिस शालग्राम-शिला में द्वार-स्थान पर परस्पर सटे हुए दो चक्र हों, जो शुक्ल वर्ण की रेखा से अंकित और शोभासंपन्न दिखाई देती हों, उसे भगवान् श्रीगदाधर का स्वरूप समझना चाहिए। संकर्षण मूर्ति में दो सटे हुए चक्र होते हैं, लाल रेखा होती है और उसका पूर्वभाग कुछ मोटा होता है। पद्युम्न के स्वरूप में कुछ-कुछ पीलापन होता है और उसमें चक्र का चिह्न सूक्ष्म रहता है। अनिरुद्ध की मूर्ति गोल होती है और उसके भीतरी भाग में गहरा एवं चौड़ा छेद होता है इसके सिवा, वह द्वारभाग में नीलवर्ण और तीन रेखाओं से युक्त भी होती है। भगवान् नरायण श्यामवर्ण के होते हैं, उनके मध्यभाग में गदा के आकार की रेखा होती है और उनका नाभि-कमल बहुत ऊँचा होता है। भगवान् नृसिंह की मूर्ति में चक्र का स्थूल चिह्न रहता है, उनका वर्ण कपिल होता है तथा वे तीन या पाँच बिंदुओं से युक्त होते हैं। ब्रह्मचारी के लिए उन्हीं का पूजन विहित है। वे भक्तों की रक्षा करने वाले हैं। जिस शालग्राम-शिला में दो चक्र के चिह्न विषम भाव से स्थित हों, तीन लिंग हों तथा तीन रेखाएँ दिखाई देती हों? वह वाराह भगवान् का स्वरूप है, उसका वर्ण नील तथा आकार स्थूल होता है। भगवान् वराह भी सबकी रक्षा करने वाले हैं। कच्छप की मूर्ति श्यामवर्ण की होती है। उसका आकार पानी की भँवर के समान गोल होता है। उसमें यत्र-तत्र बिंदुओं के चिह्न देखे जाते हैं तथा उसका पृष्ठभाग श्वेत रंग का होता है। श्रीधर की मूर्ति में पाँच रेखाएँ होती हैं, वनमाली के स्वरूप में गदा का चिह्न होता है। गोल आकृति, मध्यभाग में चक्र का चिह्न तथा नीलवर्ण, यह वामन मूर्ति की पहचान है। जिसमें नाना प्रकार की अनेकों मूर्तियों तथा सर्प-शरीर के चिह्न होते हैं, वह भगवान् अनंत की प्रतिमा है। दामोदर की मूर्ति स्थूलकाय एवं नीलवर्ण की होती है। इसके मध्य भाग में चक्र का चिह्न होता है। भगवान् दामोदर नील चिह्न से युक्त होकर संकर्षण के द्वारा जगत् की रक्षा करते हैं। जिसका वर्ण लाल है, तथा जो लंबी-लंबी रेखा, छिद्र, एक चक्र और कमल आदि से युक्त एवं स्थल है, उस शालग्राम को ब्रह्मा की मूर्ति समझनी चाहिए। जिसमें बहुत छिद्र, स्थूल चक्र का चिह्न और कृष्ण वर्ण हो, वह श्रीकृष्ण का स्वरूप है। वह विन्दुयुक्त और विन्दुशून्य दोनों ही प्रकार का देखा जाता है। हयग्रीव मूर्ति अंकुश के समान आकार वाली और पाँच रेखाओं से युक्त होती है। भगवान् वैकुंठ कौस्तुभमणि धारण किए रहते हैं। उनकी मूर्ति बड़ी निर्मल दिखाई देती है। वह एक चक्र से चिह्नित

और श्याम वर्ण की होती है। मत्स्य भगवान् की मूर्ति बृहत् कमल के आकार की होती है। उसका रंग श्वेत होता है तथा उसमें हार की रेखा देखी जाती है। जिस शालग्राम का वर्ण श्याम हो, जिसके दक्षिण भाग में एक रेखा दिखाई देती हो तथा जो तीन चक्रों के चिह्न से युक्त हो, वह भगवान् श्रीरामचंद्रजी का स्वरूप है, वे भगवान् सब की रक्षा करने वाले हैं। द्वारकापुरी में स्थित शालग्रामस्वरूप भगवान् गदाधर को नमस्कार है, उनका दर्शन बड़ा ही उत्तम है। वे भगवान् गदाधर एक चक्र से चिह्नित देखे जाते हैं। लक्ष्मीनारायण दो चक्रों से, त्रिविक्रम तीन से, चतुर्व्यह चार से, वासुदेव पाँच से, प्रद्युम्न छः से, संकर्षण सात से, पुरुषोत्तम आठ से, नवव्यूह नव से, दशावतार दस से, अनिरुद्ध ग्यारह से और द्वादशात्मा बारह चक्रों से युक्त होकर जगत् की रक्षा करते हैं। इससे अधिक चक्र-चिह्न धारण करने वाले भगवान् का नाम अनंत है। दण्ड, कमंडल और अक्षमाला धारण करने वाले चतुर्मुख ब्रह्मा तथा पाँच मुख और दस भुजाओं से सुशोभित वृषध्वज महादेवजी अपने आयुधों सहित शालग्राम-शिला में स्थित रहते हैं। गौरी, चण्डी, सरस्वती और महालक्ष्मी आदि माताएँ, हाथ में कमल धारण करने वाले सूर्यदेव, हाथी के समान कँधे वाले गजानन गणेश, छः मुख वाले स्वामी कार्तिकेय तथा और भी बहुत-से देवगण शालग्राम-प्रतिमा में मौजूद रहते हैं, अतः मंदिर में शालग्राम-शिला की स्थापना अथवा पूजा करने पर ये उपयुक्त देवता भी स्थापित और पूजित होते हैं। जो पुरुष ऐसा करता है, उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि की प्राप्ति होती है।

गण्डकी अर्थात् नारायणी नदी के एक प्रदेश में शालग्राम-स्थल नाम का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, वहाँ से निकलने वाले पत्थर को शालग्राम कहते हैं। शालग्राम-शिला के स्पर्श मात्र से करोड़ों जन्मों के पाप का नाश हो जाता है। फिर यदि उसका पूजन किया जाए, तब तो उसके फल के विषय में कहना ही क्या है; वह भगवान् के समीप पहुँचाने वाला है। बहुत जन्मों के पुण्य से यदि कभी गोप्पद के चिह्न से युक्त श्रीकृष्ण-शिला प्राप्त हो जाए तो उसी के पूजन से मनुष्य के पुनर्जन्म की समाप्ति हो जाती है। पहले शालग्राम-शिला की परीक्षा करनी चाहिए; यदि वह काली और चिकनी हो तो उत्तम है। यदि उसकी कालिमा कुछ कम हो तो वह मध्यम श्रेणी की मानी गई है और यदि उसमें दूसरे किसी रंग का सम्मिश्रण हो तो वह मिश्रित फल प्रदान करने वाली होती है। जैसे सदा काठ के भीतर छिपी हुई आग मंथन करने से प्रकट होती है, उसी प्रकार भगवान् विष्णु सर्वत्र व्याप्त होने पर भी शालग्राम-शिला में

विशेष रूप से अभिव्यक्त होते हैं। जो प्रतिदिन द्वारका की शिला—गोमतीचक्र से युक्त बारह शालग्राम मूर्तियों का पूजन करता है, वह वैकुंठ-लोक में प्रतिष्ठित होता है। जो मनुष्य शालग्राम-शिला के भीतर गुफा का दर्शन करता हे, उसके पितर तृप्त होकर कल्प के अंत तक स्वर्ग में निवास करते हैं। जहाँ द्वारकापुरी की शिला—अर्थात् गोमतीचक्र रहता है, वह स्थान वैकुंठ-लोक माना जाता है; वहाँ मृत्यु को प्राप्त हुआ मनुष्य विष्णुधाम में जाता है। जो शालग्राम-शिला की कीमत लगाता है, जो बेचता है, जो विक्रय का अनुमोदन करता है तथा जो उसकी परीक्षा करके मूल्य का समर्थन करता है, वे सब नरक में पड़ते हैं। इसलिए देवि! शालग्राम-शिला और गोमती-चक्र की खरीद-बिक्री छोड़ देनी चाहिए। शालग्राम-स्थल से प्रकट हुए भगवान् शालग्राम और द्वारका से प्रकट हुए गोमती-चक्र—इन दोनों देवताओं का जहाँ समागम होता है, वहाँ मोक्ष मिलने में तनिक भी संदेह नहीं है। द्वारका से प्रकट हुए गोमती-चक्र से युक्त, अनेकों चक्रों से चिह्नित तथा चक्रासन-शिला के समान आकार वाले भगवान् शालग्राम साक्षात् चित्स्वरूप निरंजन परमात्मा ही हैं। ओंकाररूप तथा नित्यानंदस्वरूप शालग्राम को नमस्कार है। महाभाग शालग्राम! मैं आपका अनुग्रह चाहता हूँ। प्रभो! मैं ऋण से ग्रस्त हूँ, मुझ भक्त पर अनुग्रह कीजिए।

शालग्राम शिला के पूजन का माहात्मय

कार्तिकेय ने कहा—भगवन्! आप योगियों में श्रेष्ठ हैं। मैंने आपके मुख से सब धर्मों का श्रवण किया। प्रभो! अब शालग्राम-पूजन की विधि का विस्तार के साथ वर्णन कीजिए।

महादेवजी बोले—महामते! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है। वत्स! तुम जो कुछ पूछ रहे हो, उसका उत्तर देता हूँ; सुनो। शालग्राम-शिला में सदा चराचर प्राणियों सहित समस्त त्रिलोकी लीन रहती है। जो शालग्राम-शिला का दर्शन करता, उसे मस्तक झुकाता, स्नान कराता और पूजन करता है, वह कोटि यज्ञों के समान पुण्य तथा कोटि गोदानों का फल पाता है। बेटा! जो पुरुष सर्वदा भगवान् विष्णु की शालग्राम-शिला का चरणामृत पान करता है, उसने गर्भवास के भयंकर कष्ट का नाश कर दिया। जो सदा भोगों में आसक्त और भक्तिभाव से हीन है, वह भी शालग्राम-शिला का पूजन करके भगवतस्वरूप हो जाता है। शालग्राम-शिला का स्मरण, कीर्तन, ध्यान, पूजन और नमस्कार करने पर कोटि-कोटि ब्रह्म-हत्याओं का पाप नष्ट हो जाता है। शालग्राम-शिला का दर्शन करने से अनेक पाप दूर हो जाते हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन शालग्राम-शिला की पूजा करता है, उसे न तो यमराज का भय होता है और न मरने या जन्म लेने का ही। जिन मनुष्यों ने भक्तिभाव से शालग्राम को नमस्कार मात्र कर लिया, उनको तथा मेरे भक्तों को फिर मनुष्य-योनि की प्राप्ति कैसे हो सकती है। वे तो मुक्ति के अधिकारी हैं। जो मेरी भक्ति के घमंड में आकर मेरे प्रभु भगवान् वासुदेव को नमस्कार नहीं करते, वे पाप से मोहित हैं; उन्हें मेरा भक्त नहीं समझना चाहिए।

करोड़ों कमल-पुष्पों से मेरी पूजा करने पर जो फल होता है, वही शालग्राम-शिला के पूजन से कोटिगुना होकर मिलता है, जिन लोगों ने मर्त्यलोक में आकर शालग्राम शिला का पूजन नहीं किया, उन्होंने न तो कभी मेरा पूजन किया और न नमस्कार ही किया। जो शालग्राम-शिला के अग्रभाग में मेरा पूजन करता है, उसने मानो लगातार इक्कीस युगों तक मेरी पूजा कर ली। जो मेरा भक्त होकर वैष्णव पुरुष

का पूजन नहीं करता वह मुझसे द्वेष रखने वाला है। उसे तब तक के लिए नरक में रहना पड़ता है, जब तक कि चौदह इन्द्रों की आयु समाप्त नहीं हो जाती।

जिसके घर में कोई वानप्रस्थी, वैष्णव अथवा संन्यासी दो घड़ी भी विश्राम करता है, उसके पितामह आठ युगों तक अमृत भोजन करते हैं। शालग्राम-शिला से प्रकट हुए लिंगों का एक बार भी पूजन करने पर मनुष्य योग और सांख्य से रहित होने पर भी मुक्त हो जाते हैं। मेरे कोटि-कोटि लिंगों का दर्शन, पूजन और स्तवन करने से जो फल मिलता है, वह एक ही शालग्राम-शिला के पूजन से प्राप्त हो जाता है।

जो वैष्णव प्रतिदिन बारह शालग्राम शिलाओं का पूजन करता है, उसके पुण्य का वर्णन सुनो। गंगाजी के तट पर करोड़ों शिवलिंगों का पूजन करने से तथा लगातार आठ युगों तक काशीपुरी में रहने से जो पुण्य होता है, वह उस वैष्णव को एक ही दिन में प्राप्त हो जाता है। अधिक कहने की क्या आवश्यकता—जो वैष्णव मनुष्य शालग्राम-शिला का पूजन करता है, उसके पुण्य की गणना करने में मैं तथा ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं; इसलिए बेटा! मेरे भक्तों को उचित है कि वे मेरी प्रसन्नता के लिए भक्तिपूर्वक शालग्राम-शिला का भी पूजन करें। जहाँ शालग्राम-शिलारूपी भगवान् केशव विराजमान हैं, वहीं संपूर्ण देवता, असुर, यक्ष तथा चौदहों भुवन मौजूद हैं। अन्य देवताओं का करोड़ों बार कीर्तन करने से जो फल होता है, वह भगवान् केशव का एक बार कीर्तन करने से ही मिल जाता है। अतः कलियुग में श्रीहरि का कीर्तन ही सर्वोत्तम पुण्य है। श्रीहरि का चरणोदक पान करने से ही समस्त पापों का प्रायश्चित हो जाता है। फिर उनके लिए दान, उपवास और चान्द्रायण-व्रत करने की क्या आवश्यकता है।

बेटा स्कंद! अन्य सभी शुभकर्मों के फलों का माप है; किंतु शालग्राम-शिला के पूजन से जो फल मिलता है, उसका कोई माप नहीं। जो विष्णुभक्त ब्राह्मण को शालग्राम-शिला दान करता है, उसने मानो सौ यज्ञों द्वारा भगवान् का यजन कर लिया। जो शालग्राम-शिला के जल से अपना अभिषेक करता है, उसने संपूर्ण तीर्थों में स्नान कर लिया और समस्त यज्ञों की दीक्षा ले ली। जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक एक-एक सेर तिलक दान करता है, वह शालग्राम-शिला के पूजन-मात्र से उस फल को प्राप्त कर लेता है। शालग्राम-शिला को अर्पण किया हुआ थोड़ा-सा पत्र, पुष्प, फल, जल, मूल और दूर्वादल भी मेरु पर्वत के समान महान् फल फल देने वाला होता है।

जहाँ शालग्राम-शिला होती है, वहाँ भगवान् श्रीहरि विराजमान रहते हैं। वहाँ किया हुआ स्नान और दान काशी से सौ गुना अधिक फल देने वाला है। प्रयाग,

कुरुक्षेत्र, पुष्कर और नैमिषारण्य—ये सभी तीर्थ वहाँ मौजूद रहते हैं; अत: वहाँ उन तीर्थों की अपेक्षा कोटिगुना अधिक पुण्य होता है। काशी में मिलने वाला मोक्षरूपी महान् फल भी वहाँ सुलभ होता है। जहाँ शालग्राम-शिला से प्रकट होने वाले भगवान् गोमती-चक्र हों तथा जहाँ इन दोनों का संगम हो गया हो वहाँ नि:संदेह मोक्ष की प्राप्ति होती है। शालग्राम-शिला के पूजन में मंत्र, जप, भावना, स्तुति अथवा किसी विशेष प्रकार के आचार का बंधन नहीं है। शालग्राम-शिला के सम्मुख विशेषत: कार्तिक मास में आदरपूर्वक स्वस्तिक का चिह्न बनाकर मनुष्य अपनी सात पीढ़ियों को पवित्र कर देता है। जो भगवान् केशव के समक्ष मिट्टी अथवा गेरु आदि से छोटा-सा भी मंडल (चौक) बनाता है, वह कोटि कल्पों तक दिव्यलोक में निवास करता है। श्रीहरि के मंदिर को सजाने से अगम्यागमन तथा अभक्ष्यभक्षण जैसे पाप भी नष्ट हो जाते हैं। जो नारी प्रतिदिन भगवान् विष्णु के सामने चौक पूरती है, वह सात जन्मों तक कभी विधवा नहीं होती।

सभी धनावंशियों को शालग्राम शिला को अपने घर के मंदिर में या मंदिर में स्थापित तो अवश्य करनी चाहिए, पर शालग्राम शिला का चयन उपरोक्त प्रकारों में से बहुत सोच-समझ कर करना चाहिए।

स्त्रियों के लिए शालग्राम पूजन का निषेध किया गया है, सभी माताओं-बहनों को इसका पालन करना चाहिए।

भगवान के मंदिर में बतीस अपराधों का निषेध

भगवान् के मंदिर में खड़ाऊँ या सवारी पर चढ़कर जाना, भगवत्-संबंधी उत्सवों का सेवन न करना, भगवान् के सामने जाकर प्रणाम न करना, उच्छिष्ट या अपवित्र अवस्था में भगवान् की वंदना करना, एक हाथ से प्रणाम करना, भगवान् के सामने ही एक स्थान पर खड़े-खड़े प्रदक्षिणा करना, भगवान् के आगे पाँव फैलाना, पलंग पर बैठना, सोना, खाना, झूठ बोलना, जोर-जोर से चिल्लाना, परस्पर बात करना, रोना, झगड़ा करना, किसी को दण्ड देना, अपने बल के घमंड में आकर किसी पर अनुग्रह करना, स्त्रियों के प्रति कठोर बात कहना, कम्बल ओढ़ना, दूसरे की निंदा, परायी स्तुति, गाली बकना, अधोवायु का त्याग (अपशब्द) करना, शक्ति रहते हुए गौण उपचारों से पूजा करना—मुख्य उपचारों का प्रबंध न करना, भगवान् को भोग लगाए बिना ही भोजन करना, सामयिक फल आदि को भगवान् की सेवा में अर्पण न करना, उपयोग में लाने से बचे हुए भोजन को भगवान् के लिए निवेदन करना, भोजन का नाम लेकर दूसरे की निंदा तथा प्रशंसा करना, गुरु के समीप मौन रहना, आत्म-प्रशंसा करना तथा देवताओं को कोसना—ये विष्णु के प्रति बतीस अपराध बताए गए हैं। 'मधुसूदन! मुझसे प्रतिदिन हजारों अपराध होते रहते हैं; किंतु मैं आपका ही सेवक हूँ, ऐसा समझकर मुझे उनके लिए क्षमा करें। इस मंत्र का उच्चारण करके भगवान् के सामने पृथ्वी पर दंड की भांति पड़कर साष्टांग प्रणाम करना चाहिए। ऐसा करने से भगवान् श्रीहरि सदा हजारों अपराध क्षमा करते हैं। द्विजातियों के लिए सबेरे और शाम—दो ही समय भोजन करना वेदविहित है। गोल लौकी, लहसुन, ताड़ का फल और भाँटा—इन्हें वैष्णव पुरुषों को नहीं खाना चाहिए। वैष्णव के लिए बड़, पीपल, मटर, कुंभी, तिंदुक, कोविदार (कचनार) और कदम्ब के पत्ते में भोजन करना निषिद्ध है। जला हुआ तथा भगवान् को अर्पण न किया हुआ अन्न, जम्बीर और बिजौरा नींबू, शाक तथा खाली नमक भी वैष्णव को नहीं खाना चाहिए। यदि दैवात् कभी खा ले तो भगवन्नाम का स्मरण करना चाहिए। हेमंत ऋतु में उत्पन्न होने वाला सफेद धान जो सड़ा

हुआ न हो, मूँग, तिल, यव, केराव, कंगनी, नीवार (तीना), शाक, हिलमोचिका (हिलसा), कालशाक, बथुवा, मूली, दूसरे-दूसरे मूल-शाक, सेंधा और साँभर नमक, गाय का दही, गाय का घी, बिन माखन निकाला हुआ गाय का दूध, कटहल, आम, हरें, पिप्पली, जीरा, नारंगी, इमली, केला, लवली (हरफा रेवरी), आँवले का फल, गुड़ के सिवा ईख के रस से तैयार होने वाली अन्य सभी वस्तुएँ तथा बिना तेल के पकाया हुआ अन्न—इन सभी खाद्य पदार्थों को मुनि लोग हविष्यान्न कहते हैं।

जो मनुष्य तुलसी के पत्र और पुष्प आदि से युक्त माला धारण करता है, उसको भी विष्णु ही समझना चाहिए। आँवले का वृक्ष लगाकर मनुष्य विष्णु के समान हो जाता है। आँवले के चारों ओर साढ़े तीन सौ हाथ की भूमि का कुरुक्षेत्र जानना चाहिए। तुलसी की लकड़ी के रुद्राक्ष के समान दाने बनाकर उनके द्वारा तैयार की हुई माला कंठ में धारण करके भगवान् का पूजन आरम्भ करना चाहिए। भगवान् को चढ़ाई हुई तुलसी की माला मस्तक पर धारण करे तथा भगवान् को अर्पण किए हुए चंदन के द्वारा अपने अंगों पर भगवान् का नाम लिखे। यदि तुलसी के काष्ठ की बनी हुई मालाओं से अलंकृत होकर मनुष्य देवताओं और पितरों के पूजनादि कार्य करे तो वह कोटिगुना फल देने वाला होता है। जो मनुष्य तुलसी के काष्ठ की बनी हुई माला भगवान् विष्णु को अर्पित करके पुनः प्रसाद रूप से उसको भक्तिपूर्वक धारण करता है, उसके पातक नष्ट हो जाते हैं। पाद्य आदि उपचारों से तुलसी की पूजा करके इस मंत्र का उच्चारण करे—जो दर्शन करने पर सारे पाप समुदाय का नाश कर देती है, स्पर्श करने पर शरीर को पवित्र करती है, जल से सींचने पर यमराज को भी भय पहुँचाती है, आरोपित करने पर भगवान् श्रीकृष्ण के समीप ले जाती है और भगवान् के चरणों में चढ़ाने पर मोक्षरूपी फल प्रदान करती है, उस तुलसी देवी को नमस्कार है।

धनावंशीय नित्यकर्म विधि

सन्ध्या विधि:-

स्नान कर, श्वेत वस्त्र (संभवतः सफेद धोती) धारण करें। उत्तरीय भी ओढ़ सकते हैं। पूजागृह, मंदिर में जाकर ठाकुरजी को प्रणाम करें।

भगवद् प्रणाम करते समय इस श्लोक का उच्चारण करें—

अपराध सहस्र भाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे।
अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात्कुरु।।

फिर पूर्वाभिमुख हो कर शुद्ध आसन पर बैठें। संभवतः ऊन का आसन हो। चांदी, ताम्बा या पीतल के पंचपात्र, आचमनी अर्घा को स्वयं द्वारा लाए गए, शुद्ध जल से भर कर, सबसे पहले मस्तक पर तिलक धारण करें। बाएँ हाथ में 'ॐ केशवाय नमः' इस मंत्र के उच्चारण के साथ जल लें। दाहिने हाथ में गोपीचंदन को घिसें, फिर चांदी की सलाई से ललाट पर तिलक धारण करें। तिलक बारह, पांच और तीन लगाए जा सकते हैं।

गायत्री मंत्र के साथ चोटी को बांधें।

फिर बाएँ हाथ से आचमनी के द्वारा दाहिने हाथ में जल लेकर 'ॐ अच्युताय नमः ॐ अनन्ताय नमः ॐ गोविन्दाय नमः' इन तीन मंत्रों के साथ होठ से आवाज किए बिना आचमन करें।

ॐ केशवाय नमः (दाहिने अंगूठे से दाहिने होठ का स्पर्श करें।)

ॐ नारायणाय नमः (दाहिने अंगूठे से दाहिने होठ का स्पर्श करें।)

ॐ माधवाय नमः (दाहिने अंगूठे व अनामिका से दाहिनी आँख का स्पर्श करें।)

ॐ गोविन्दाय नमः (दाहिने अंगूठे व अनामिका से बायीं आंख का स्पर्श करें।)

ॐ विष्णवे नमः (दाहिने अंगूठे व तर्जनी से नाक के दाहिने भाग का स्पर्श करें।)

ॐ मधुसूदनाय नमः (दाहिने अंगूठे व तर्जनी से नाक के बाएँ भाग का स्पर्श करें।)

ॐ त्रिविक्रमाय नमः (दाहिने अंगूठे व कनिष्ठिका से दाएँ कान का स्पर्श करें।)

ॐ वामनाय नमः (दाहिने अंगूठे व कनिष्ठिका से बाएँ कान का स्पर्श करें।)

ॐ श्रीधराय नमः (दाहिने अंगूठे व मध्यमा से दाहिनी भुजा का स्पर्श करें।)

ॐ हृषीकेशाय नमः (दाहिने अंगूठे व मध्यमा से बायीं भुजा का स्पर्श करें।)

ॐ पद्मनाभाय नमः (पूरे हाथ से हृदय का स्पर्श करें।)

ॐ दामोदराय नमः (पूरे हाथ से मस्तक का स्पर्श करें।)

उपरोक्त प्रकार अंग न्यास करने के पश्चात 'ॐ पुण्डरीकाक्षाय नमः' मंत्र का स्मरण करते हुए हृदय कमल में स्थित भगवान का ध्यान करें।

प्राणायाम

ॐ भूः ॐ भुव ॐ स्वः ॐ मह ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं ॐ तत्सवितुः। ॐ आपो ज्योतिऽमृतम् ब्रह्मभुर्भुवः स्वरोम्। उक्त सावित्री मंत्र से अथवा ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्। इस विष्णु गायत्री से तीन बार 'पूरक' (उक्त मंत्र का उच्चारण करते हुए हृदय में श्वास भरें, फिर दोनों नासापुट दबाकर मंत्रोच्चारण करते हुए श्वास रोकने की क्रिया 'कुम्भक' करें तथा दाहिने नासापुट से मंत्रोच्चारण के साथ धीरे-धीरे श्वास उतारने की क्रिया 'रेचक' कहलाती है। इन तीनों क्रियाओं को मिलाकर प्राणायाम कहते हैं।)

संकल्प

निम्न संकल्प करें—

श्री भगवदाहाया भगवद्कैंकर्य स्वरूपं श्रीमन्नारायणप्रीत्यर्थं प्रातः सन्ध्योपासनमहं करिष्ये।

मार्जनम्

ॐ पवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां मतोऽपि वा। यः पुण्डरीकाक्षः पुनातु। ऐसा उच्चारण कर बाएँ हाथ में रखे हुए जल से दाहिने हाथ की अनामिका से प्रोक्षण करें।

मंत्राचमनम्

ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभयः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पदभ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु यत् किंचितद्दुरितं मयि इदमहम्माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा।

दाहिने हाथ में जल लेकर बाएँ हाथ से ढक कर इस मंत्र का पाठ किया जाए। मंत्र समाप्ति पर आचमन कर लिया जाए तथा पूर्वोक्त मंत्रों से पुनः तीन बार आचमन कर न्यास किया जाए।

मार्जनम्

ॐ आपो हिष्ठा मयो भुवः। तान ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे। यो वः शिवतमो रसः। तस्य भा जयते हनः। उशतीरिव मातरः। ॐ तस्मा अरंग मामवो। यस्य क्षयायजिन्वथ। आपो जन यथाचन।

प्रत्येक मंत्र से दाहिने हाथ की अनामिका से बाएँ हाथ में लिए हुए जल से पूरे शरीर पर प्रोक्षण करें। आठवीं ऋचा से पैरों पर तथा अंतिम ऋचा से फिर मस्तक पर प्रोक्षण करें।

अर्घ्य-प्रदान संकल्प

श्रीभगवदाज्ञया भगवद्कैंकर्य स्वरूपं श्रीमन्नारायणप्रीत्यर्थं प्रातः सन्ध्या वन्दार्घ्य प्रदानं करिष्ये।

आचमनी में जल लेकर संकल्प करें।

फिर दोनों हाथों की अंजलि में अथवा अर्घ्यपात्र (चांदी के अरघे) में जल लेकर गायत्री मंत्र का उच्चारण करें। फिर 'श्री सूर्यनारायणाय इदमर्घ्यं न मम्। ऐसा कह कर अर्घ्य प्रदान करें। अर्घ्य देने के बाद दाहिने हाथ के अंगूठे से दाहिने नासापुट, दाहिनी आंख, दाहिने कान का स्पर्श करें। इस प्रकार तीन बार अर्घ्य प्रदान करें।

आसन पर बैठ कर प्राणायाम करें।

प्रातः सन्ध्या के लिए सूर्योदय तथा सायं सन्ध्या के लिए सूर्यास्त का समय चूक जाने पर प्रायश्चित के रूप में सूर्यनारायण को चौथा अर्घ्य प्रदान करना चाहिए।

।। श्री।।

प्रातः स्मरणीय वन्दना

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले तु गोविन्दः प्रभाते कर दर्शनमः।।

●●

समुद्रवसने देवि! पर्वतस्तन मण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे।।

●●

प्रातःकाले पिता माता ज्येष्ठभ्राता तथैव च।
आचार्यः स्थविराश्चैव वन्दनीया दिने दिने।।

●●

वक्र तुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभो।
निर्विघ्नं कुरूमे देव सर्व कार्येषु सर्वदा।।

●●

नमस्तमै गणेशाय सर्वविघ्नविनाशिने।
कार्यारम्भेषु सर्वेषु पूजितो यः सुरैरपि।।

●●

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः।।

●●

धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नमामि यः पठेच्छृणुयदापि।।

●●

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते।।

●●

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये।।

●●

शुक्ला ब्रह्मविचारसार परमामाद्यां जगद्व्यापिनीम्।
वीणा पुस्तक धारिणमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।।

●●

हस्तेस्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थिताम्।
वन्दे तां परमेश्वरी भगवती बुद्धिप्रदां शारदाम्।।

●●

या कुन्देन्दुतुषार हारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणावरददण्डमंण्डितकरा या श्वेत पद्मासना।।
या ब्रह्माच्युतशंकर प्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता।
सा मां पातु सरस्वती-भगवती निःशेष जाड्यापहा।।

●●

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

●●

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्व मम देवदेव।।

●●

सरस्वती महाभागे वरदे काम रूपिणी।
विश्वरूप विशालाक्षि दे विद्या परमेश्वरि।।

●●

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वराः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्मः तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।

●●

ध्यान मूलं गुरोर्मूतिः पूजा मुलं गुरो पदम्।
मन्त्र मूलं गुरोर्वाक्यं मोक्ष मूलं गुरो कृपा।।

●●

परमाद्वैत विज्ञानं कृपया यो ददातिवै।
सोऽयं गुरु गुरु साक्षाच्छिववैन संशय।।

●●

ईश्वरो गुरुरात्मेती मूर्ति भेद विभागिने।
व्योमंवद् व्याप्त देहाय दक्षिणा मूर्तयेनमः।।

●●

वन्देऽहं सच्चिदानन्दं भेदातीतं जगद्गुरुम।
नित्य पूर्ण निराकारं निर्गुण सर्वसंस्थितम्।।

●●

परत्परतरं पर ध्येयं नित्यमानन्द-कारणम्।
हृदयाकाश्ममध्यस्थं शुद्ध-स्फटिक-सन्निभम्।।

●●

अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं तेन चराऽचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।

●●

अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया।
चक्षुरुन्मीलित तेन तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।

●●

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनम्।
बिन्दु-नादकलातीतं तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।

●●

अनेक-जन्म-सम्प्राप्त-कर्मबन्ध-विदाहिने।
अज्ञज्ञान-प्रदानेन तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।

●●

शिष्याणां मोक्षदानाय लीलया देहधारिणे।
सदेहेऽपि विदेहाय तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।

●●

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं।
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।।
लक्ष्मीकान्त कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं।
वन्दे विष्णुं भव भय हरं सर्वलोकैकनाथम्।।

●●

सशङ्खचक्रं सकिरीट कुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसी रुहेक्षणम्।
सहार वक्षःस्थल कौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम्।।

●●

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र रुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिग्यै स्तवैः
वैदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगः
ध्यानावस्थित तद्गेत न मनसा पश्यन्ति यं योगिनो।
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः।।

●●

वसुदेव सुतं देवं कंस चाणूर मर्दनम्।
देवकी परमानन्दं कृष्ण वन्दे जगद्गुरुम्।।

●●

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवी स्वरस्वती व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।

●●

ॐ हिरण्यगर्भपुरुषप्रधानव्यक्तरूपिणे।
ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वभाविने।।

●●

मूकं करोति वाचालं पङ्गुलंघयेत गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्।।

●●

धरणी पालको धन्यः पुण्डरीकः सनातनः।
गोपतिर्भुपतिः शास्ता प्रहर्ता विश्वतोमुख।।

●●

आदिकर्ता महाकर्ता महाकालः प्रतापवान।
जगज्जीवोजगद्धाता जगद्धर्ता जगद्वसु।।

●●

गोकुलेन्द्रो महाचन्द्रः शर्वरी प्रियकारकः।
कमला मुखलोलाक्षः पुण्डरीकशुभावहः।।

●●

सर्वमंगलदाता च सर्वकामप्रदायकः।
आदिकर्ता महीभर्ता सर्वसागर सिंधुजः।।

●●

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्,
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णन्दुसुन्दरमुखादरविन्यनेत्रात्,
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने।।

●●

नमः पण्ढरिनाथाय भीमा तीरनिवासिने।
नमोऋषि प्रसन्नाय वरदाय नमोनमः।।

●●

इष्टिकारूढरूपाय समपादाय ते नमः।
कटिविन्यस्तहस्ताय मुखब्रह्मात्मने नमः।।

●●

नमस्तु पुण्डरीकाय चंद्रभागाय ते नमः।
नमो रुक्मणिनाथाय महामूर्त्ये नमो नमः।।

●●

रेवतीरमणभ्रातः परिजातापहारक।
वासुदेवार्जुनसखा द्वारिकानाथ ते नमः।।

●●

शङ्खासुरप्राणहर रुक्मणिप्राणवल्लभ।
करवंशीधर कृष्ण द्वारिकाधीश ते नमः।।

●●

रमेश देवकीपुत्र सच्चिदानंद विग्रह।
मेघश्यामाङ्ग गोपीश द्वारिकेश नमो नमः।।

●●

श्रीकृष्ण रुक्मिणीकान्त गोपीजन मनोहर।
संसार सागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो।।

●●

केशव क्लेशहरण नारायण जनार्दन।
गरुडध्वज गोविन्द द्वारिकाधिपते नमः।।

●●

रे रे नाथ कृपानाथ लोकनाथ जगत्गुरो।
वायुवाहन भूतेश रणछोड नमोऽस्तुते।।

●●

शङ्खचूड कंसकाल श्रीनिधे भक्तवत्सल।
कन्दर्पकोटिलावण्य डङ्कपूवते नमः।।

●●

रमाकान्त जितक्रोध मुकुन्द मुरमर्दन।
मेघनाश पद्मनाभ डाकोराधीश ते नमः।।

●●

घनश्याम नमामि त्वां नारायण महाप्रभो।
जीवाभयप्रद कृष्ण द्वारिकामत मेऽवतु।।

●●

ॐ कस्तूरी तिलकं ललाट पटले वक्षःस्थल कौस्तुभं।
नासाग्रेवरमौक्तिकम् करतले वेणुः करे कंकणम्।।
सर्वांगे हरिचंदनं सुललितं कण्ठेह मुक्तावलीः।
गोपस्त्री परिवेष्ठितो विजयते गोपाल चूड़ामणि।।

●●

फुल्लेन्दीवर कान्तिमिन्दुवदनं वर्हावतंसप्रियं।
श्रीवत्सांक मुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम्।।
गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गोपासंघावृतं।
गोविन्दं कलवेणु वादनपरं दिव्याङ्गभूषं भुजे।।

●●

ॐ कर्पूरगौरं करुणावतारम् संसार सारं भुजगेन्द्र हारम्।
सदा वसन्त हृदयारविन्दे भवम् भवानी सहितं नमामि।।

●●

अनन्तरुपिणी लक्ष्मीरपारगुणसागरी।
अणिमादिसिद्धिदात्री शिरसा प्रणमाम्यहम्।।
आपयुद्धारिणी त्वंहि आद्या शक्तिः शुभापरा।
आद्या आनन्ददात्री च शिरसा प्रणमाम्यहम्।।

●●

जगन्माता जगत्कर्त्री जगदाधाररुपिणी।
जयप्रदा जानकी च शिरसा प्रणमाम्यहम्।।
अन्नपूर्णे सदा पूर्णे शङ्करप्राणवल्लभे।
ज्ञानवैराग्यसिद्धयर्थं भिक्षां देहि च पार्वति।।

●●

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने।।
श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम।
श्रीराम राम भरताग्रह राम राम।।

●●

श्रीराम राम रणकर्कश राम राम।
श्रीराम राम शरणं भव राम राम।।
श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि।
श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि।।

●●

श्रीराम चन्द्रचरणौ शिरसा नमामि।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये।।

●●

रघुपति राघव राजाराम।
पतितपावन सीताराम।।

●●

आदौ राम-तपोवनादि-गमनं हत्वा मृगं काचंनं
वैदेही-हरणं जटायु-मरणं सुग्रीव-सम्भाषणम्।
बालिर्निदलनं समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनं
पश्चाद् रावण-कुम्भकर्णहननं चैतद्धि रामायणम्।।

●●

आदौ देवकि-देवगर्भ-जननं गोपीगृहे वर्धनं
मायापूतनि-जीवितापहरणं गोवर्द्धनोद्धारणम्।
कंसच्छेदन-कौरवादिहननं कुन्तीसुतपालनं
एतद्भागवतं पुराणकथितं श्रीकृष्णलीलामृतम्।।

●●

आदौ पाण्डव-धार्तराष्ट्रजननं लक्षागृहे दाहनं
द्यूते श्रीहरणं वने विचरणं मत्स्यालये वर्तनम्।
लीला-गो-ग्रहणं रणे विहरणं सन्धिक्रियाजृम्भणं
पश्चात भीष्म-सुयोधनादि-हननं चैतन्महाभारतम्।।

●●

मनोजवं मारुत-तुल्य-वेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि।।

●●

ब्रह्मामुरारि श्रीपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम।।

●●

हरं हरि हरिश्चन्द्रं हनुमन्तं हलायुधम्।
पच्चकं हं स्मेरेन्नित्यं घोरसङ्कटनाशनम्।।

●●

उमा उषा च वैदेहीं रमा गङ्गति पच्चकम्।
प्रातरेव स्मरेन्नित्यं सौभाग्यं वर्द्धते सदा।।

●●

सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः
सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च।
सप्त स्वरः सप्त रसातलानि
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।

●●

सप्तर्णवाः सप्त कुलाचलाश्च
सप्तर्षयो द्वीपवनानि सप्त।
भूरादिकृत्वा भुवनानि सप्त
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।

●●

पृथ्वी संगंधा सरसास्तथापः
स्पर्शी च वायुर्ज्वलनं च तेजः।
नभः सशब्दां महता सहैव
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।

●●

महेन्द्रो मलयः सहयो देवतात्मा हिमालयः।
ध्येयो रैवतको विंध्यो गिरिश्चारावतिस्तता।।

●●

गङ्गा सिन्धुश्च कावेरी यमुना च सरस्वती।
रेवा महानदी गोदा ब्रह्मपुत्रः पुनातु माम।।

●●

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवंतिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः।।

●●

प्रयागं पाटलीपुत्रं विजयानगरं पुरीम्।
इन्द्रप्रस्थं गयां चैव प्रत्यूषे प्रत्यहं स्मरेत्।।

●●

वरुंधत्यनसूया च सावित्री जानकी सती।
तेजस्विनी च पाञ्चाली वंदनीया निरंतरम्।।

●●

लक्ष्मीरहल्या चन्नमा मीरा दुर्गावती तथा।
कष्णगी च महासाध्वी शारदा च निवेदिता।।

●●

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूति र्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम्।।

●●

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात्

ॐ असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृतं गमय।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते
पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्ण मेवावाशिष्य ते।।

ॐ सहनाववतु। सह नौ भुनक्तु। सहवीर्य करवा वहै
तेजस्वि नाबधीत मस्तु। मा विद्विषा वहै।।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः
⌘⌘

।। श्रीराम-वन्दना।।

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्।।

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय मानसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायः पतये नमः।।

नीलाम्बुजश्यामल कोमलाङ्ग सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्।।

●●

।। श्रीरामावतार।।

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।

लोचन अभिराम तनु घनश्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिन्धु खरारी।।

कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
गाया गुण ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता।।

करुना सुख सागर सब गुण आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयऊ प्रगट श्रीकंता।।

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै।।

उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै।।

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।।

सुनि बचन सुजाना गेदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा।।

●●

।। श्रीराम-स्तुति।।

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन, हरण भवभय दारुणं।
नवकंज-लोचन, कंज-मुख, कर-कंज, पद कंजारुणं।।

कंदर्प अगणित अमित छवि, नवनील-नीरद सुन्दरं।
पट पीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावरं।।

भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्यवंश-निकन्दनं।
रघुनंद आनंदकंद कोशलानंद दशरथ-नन्दनं।।

सिर मुकुट कुण्ड तिलक चारु उदारु अंग विभूषणं।
आजानुभुज शर-चाप-धर, संग्राम-जिन-खरदूषणं।।

इति वदति तुलसीदास शंकर-शेष-मुनि-मन-रंजनं।
मम हृदय-कंज निवास कुरु, कामादि खल-दल गंजनं।।

मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर सांवरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो।।

एहि भांति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियं हरषीं अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली।।

सोरठा

जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे।।
सियावर रामचन्द्र की जय।।

●●

।। श्रीराम-निवेदन।।

मो सम दीन न दीन हित तुम समान रघुवीर।
अस बिचारी रघुवंशमणि हरहुं विषम भव पीर।।

बार बार बर मांगहुं, हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी, भक्ति सदा सत्संग।।

अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्वान।
जन्म जन्म रति राम पद, यह बरदान न आन।।

स्वामी मोंहि न बिसारियों, लाख लोग मिली जाहिं।
हमसे तुमको बहुत हैं, तुमसे हमको नाहिं।।

नहिं विद्या नहिं बाहुबल, नहिं खरचन को दाम।
मोसे पतित अपङ्ग की, तुम पति राखहु राम।।

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
'तुलसी' संगत साधु की, कटै कोटि अपराध।।

श्रवण सुयश सुनि आयंऊ, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि-त्राहि आरती हरन, शरण सुखद रघुबीर।।

कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिंहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोंहि राम।।
सियावर रामचन्द्र भज जय शरणमः।।

●●

।। आरती ।।

ॐ जय जगदीश हरे स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्तजनों के संकट क्षण में दूर करे।।ॐ ।।

जो ध्यावे फल पावे दुख विनसे मन का।
सुख सम्पत्ति घर आवे कष्ट मिटे तन का।।ॐ ।।

मात-पिता तुम मेरे शरण गहूँ किस की।
तुम बिन और न दूजा आस करूँ जिस की।।ॐ ।।

तुम पूरण परमात्मा तुम अन्तर्यामी।
पारब्रह्म परमेश्वर तुम सब के स्वामी।।ॐ ।।

तुम करुणा के सागर तुम पालनकर्ता।
मैं मूरख खल कामी कृपा करो भर्ता।।ॐ ।।

तुम हो एक अगोचर सब के प्राणपति।
किस विधि मिलूँ दयामय तुमको मैं कुमति।।ॐ ।।

दीनबन्धु दुःख हर्ता तुम ठाकुर मेरे।
करुणा हस्त बढ़ाओ द्वार पड़ा तेरे।।ॐ ।।

विषय विकार मिटाओ पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ सन्तन की सेवा।।ॐ ।।

●●